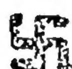
अध्यक्ष
राजा) रामकुमार-बुकडिपो,
जबलपुर.



मुद्रक
श्रीविपिनविहारी कपूर
(राजा) रामकुमार-प्रेस,
लखनऊ.

प्राक्कथन

मध्यप्रदेश के हाई स्कूल की १० वीं तथा ११ वीं कक्षाओं के बालकों के लिए मैं एक ऐसे कविता-संग्रह की आवश्यकता अनुभव करता था जो लकीर-पिटी परम्परा से भिन्न हो और बालकों के लिये सच्चे अर्थ में उपयोगी हो। मेरी समझ में भिन्न-भिन्न प्राचीन और नवीन कवियों की रचनाओं से कुछ उदाहरण दे देना और इस प्रकार एक यथासम्भव प्रतिनिधि संकलन तैयार कर देना मात्र पर्याप्त नहीं। इन कक्षाओं में पढ़नेवाले छात्र तथा छात्राओं की आयु और बुद्धि को ध्यान मे रखकर 'काव्य-सुधा' में इस प्रकार का संकलन किया गया है। जो उनमें काव्य के रसास्वादन की बहुमुखी प्रेरणा जागृत करे और साथ ही साथ आगामी काव्याध्ययन के प्रति उनके मन को बलवती रुचि प्रदान करे। बहुत से प्राचीन कवियों के संग्रह के स्थान पर यदि एक प्राचीन कवि का विस्तृत अध्ययन विद्यार्थियों को कराया जाय तो अनेक कवियों की साधारण जानकारी की अपेक्षा कवि-विशेष का व्यापक सर्वतोमुख परिचय उनके हृदय पर स्थायी छाप डाल सकता है। यदि ऐसे प्रतिनिधि या सर्वाधिक लोकप्रिय प्राचीन कवि और उसकी रचनाओं का चुनाव भली भाँति किया जाय तो प्रभाव की एकता, अध्ययन की गहराई एवं रस-निमग्नता तीनों दृष्टियों से पाठकों को यह अधिक संतोष-

प्रद होगा। इसी महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक तथ्य को मैंने 'काव्य-सुधा' के संकलन में सामने रक्खा है। स्पष्ट है कि लोक-परम्परा और काव्य-संस्कृति के ऐसे प्रतिनिधि कवि के रूप में गोस्वामी तुलसीदास से अधिक उपयुक्त कवि न मिलता। इस संग्रह में उनके समस्त काव्य का मन्थन छात्रोपयोगिता को सामने रखकर किया गया है। मानस, कवितावली, गीतावली, दोहावली और विनय-पत्रिका से उनके प्रायः सरसतम अंशों को लिया गया है। साथ ही भक्ति, नीति, रस-वैचित्र्य, उक्ति-लाघव, उद्धरण-क्षमता आदि अनेक दृष्टिकोणों को सामने रखा गया है। सबसे पहिले मैंने कविता की आघातकारिणी शक्ति का ध्यान रखा है। यथासंभव ऐसे अंश दिये हैं जो पाठकों के कण्ठों के नीचे उतरें—उनकी भावनाओं में जाकर रम जायँ और इस प्रकार उनके सुख-दुख के सहचर बनकर उनके व्यक्तित्व का ही अंश बन जायँ। इन स्फुट प्रसंगों का निर्देश भी कर दिया गया है। इस प्रकार एक पुरातन कवि की कविता का विस्तार से अध्ययन कर और उसकी भाषा, भावधारा और जीवन-व्यञ्जना से परिचित होकर जब विद्यार्थी आधुनिक काल के काव्य में आयेगा तो उसकी एक विशेष प्रकार की मानसिक पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी होगी जो उसके काव्य-संस्कारों के बनने में सहायक होगी।

बारह आधुनिक कवियों का चुनाव भी 'काव्य-सुधा' में एक विशेष दृष्टिकोण से किया गया है। इनमें से छः कवि

मैंने मध्यप्रदेश के लिए हैं। अपने प्रान्त की काव्यधारा और सृजन-प्रतिभा से परिचित होना छात्रों के लिये वांछनीय है। ये छः कवि अपने-अपने क्षेत्र के प्रतिनिधि हैं। पं० माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीयता और रसवती व्यंजना के उद्भावक हैं। श्री मुकुटधर पाण्डेय हिन्दी-कविता मे स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तकों में माने गये हैं। पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र ने कृष्णायन के रचयिता के रूप में हमारे प्रान्त को देश-व्यापिनी आभा प्रदान की है। इस युग के श्रेष्ठतम महाकवियों में वे परिगणित होंगे। डाक्टर बलदेवप्रसाद मिश्र अपने ढंग के मौलिक और यशस्वी कवि हैं। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान देश-भक्ति, वीर-पूजा और मातृत्व-भावना के सरल स्वाभाविक स्वरों की साधिका हैं। श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' छायावाद की परम्परा को जीवन की यथार्थता की ओर मोड़नेवाले प्रगतिशील कवि है। मध्यप्रदेश के अन्य श्रेष्ठ कवि भी मेरी दृष्टि में थे। किन्तु प्रान्त की प्रतिनिधि कविता की झाँकी इन छः कवियों से भली भाँति मिल जाती है। इन कवियों की अपनी भाषा, अपने भाव और मौलिक अभिव्यक्ति-योजना है।

प्रान्त के बाहर के कवियों में छः का चुनाव करना मेरे लिये और भी कठिन था, पर सभी दृष्टियों से विचार करने पर स श्री श्रीधर पाठक, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, पन्त, महादेवी वर्मा और बच्चन को मैंने लिया है। आधुनिक हिन्दी कविता का प्रतिनिधित्व यह भली भाँति कर देते है। साथ ही

साथ कवियों की लोकप्रियता और विद्यार्थी-समाज पर उनके प्रभाव का भी ध्यान रखा गया है। अन्य युग-प्रवर्तक और सर्व मान्य कवियों को मैं सम्मिलित नहीं कर पाया। पहली बात तो यह है कि काव्य की पूर्ण प्रेरणा देने के लिए विस्तृत अध्ययनार्थ कवि विशेष का चुनाव करने के कारण अन्य कवियों के लिये मेरे पास बहुत सीमित स्थान रह गया। अपने प्रान्त के लब्ध-प्रतिष्ठ कवियों के काव्य का विशेष परिचय बालकों के लिये आवश्यक मानने के कारण यह स्थान और भी सीमित हो गया। स्थानाभाव के साथ दूसरा महत्त्वपूर्ण विचार बोर्ड द्वारा निर्दिष्ट हिन्दी-अध्ययन के माप-दण्ड और विद्यार्थियों की ग्रहण-शक्ति का था। कवियों के तुलनात्मक महत्त्व की नाप-तौल का विशेष ध्यान मैंने नहीं रखा। हिन्दी-कविता में स्वच्छन्दतावाद के आदि प्रवर्तक, प्रकृति के चतुर चितेरे और देश-भक्ति की भावना को मधुर गीतों का जामा पहिनानेवाले कवि श्रीधर पाठक समस्त द्विवेदीकालीन कविता के प्रतिनिधि हैं। हरिऔध और गुप्तजी भारतीय संस्कृति और मर्यादा की लोक-पावनी काव्य-धारा के दो आलोक-शिखर हैं जिनको किसी प्रकार छोड़ा नहीं जा सकता। ऐसे ही पन्त को छायावाद और महादेवी वर्मा को रहस्यवाद के प्रतिनिधि के रूप मे लिया गया है। बच्चन छायावाद के बाद आनेवाले कवियों में अग्रणी है जिन्होंने हिन्दी-कविता को जनता के निकट पहुँचाया है।

प्रत्येक कवि की रचनाओं के आरम्भ में उसका संक्षिप्त

परिचय दिया गया है—वह भी थोड़े में अधिक से अधिक जानकारी देने के लक्ष्य को लेकर। यह जानकारी स्थूल विवेचना-मात्र नहीं, वरन् आलोचना के भीतर से देने की चेष्टा की गई है।

इस संग्रह में अधिकांश कविताओं के ऊपर सरल संक्षिप्त टिप्पणियाँ दी गई हैं जो उन कविताओं के केन्द्रीय भाव और अर्थगौरव को स्पष्ट करने में सहायक होंगी। काव्यगत सौन्दर्य का सम्यक् उद्‌घाटन हो सके, यही इन टिप्पणियों का ध्येय है। इस संकेत-सूत्र को पकड़कर पाठक काव्यगत चमत्कार को उपलब्ध कर लेंगे—ऐसी आशा है। पुस्तक के अन्त में कठिन शब्दार्थ की सूची देने की प्रथा की अपेक्षा प्रत्येक पृष्ठ के नीचे ही उसमें आनेवाले कठिन शब्दों का अर्थ या उन पर टिप्पणी देना मुझे अधिक उपयुक्त जान पड़ा। पर शब्दार्थ और टिप्पणियों के आधिक्य से वि ार्थियों को परावलम्बी बनाना भी मुझे उचित नहीं लगा।

परिशिष्ट में रसों की व्याख्या और भेद-प्रभेद, अलङ्कारों के लक्षण और उदाहरण तथा मुख्य-मुख्य छन्दों का परिचय दिया गया है। अन्त में काव्य-जगत् में प्रचलित मुख्य-मुख्य वादों का परिचय भी दिया गया है।

आशा है, दृष्टि की नवीनता, संकलन की विविध रसपूर्णता तथा अन्य विशेषताओं के कारण यह संग्रह अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल होगा।

सम्पादक

क्रम-सूची

विषय		पृष्ठ

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी के सबसे महान् और लोकप्रिय कवि हैं। यही नहीं, संसार के श्रेष्ठ कवियों में उनकी गणना होती है। वे भक्त भी अनन्य हैं। कवि और भक्त का ऐसा मणि-काञ्चन योग संसार के साहित्य में अन्यत्र कम मिलता है। उन्होंने लोक-धर्म और लोक-हित की व्यापक व्यंजना अपने काव्य में की है। जीवन की मर्यादा और उसके पालन का संदेश पग-पग पर गोस्वामीजी की कविता में मिलता है। शील, सदाचार, धर्म-पालन, आत्मशुद्धि आदि कोई भी ऐसा सद्गुण नहीं जिसकी प्रेरणा तुलसी के काव्य से प्राप्त न होती हो। जिस वैराग्य का संदेश उन्होंने सुनाया है वह लोक-कर्तव्यों से विमुख करनेवाला वैराग्य नहीं है, वरन् परहित चिन्तन और साधन में तल्लीन कर देनेवाला वैराग्य है।

तुलसीदासजी का हिन्दीभाषा पर असाधारण अधिकार था—उसकी दोनों शाखाओं अवधी और व्रज-भाषा पर। रामचरित-मानस अवधी में लिखा है और कवितावली, विनयपत्रिका तथा गीतावली व्रजभाषा में। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि "भाषा की सफाई और वाक्यरचना की निर्दोषिता हिन्दी के अन्य किसी कवि में ऐसी नहीं है।" उनकी भाषा सर्वत्र परिष्कृत और सुव्यवस्थित है, शिथिलता का कहीं नाम भी नहीं है। उनमें अलंकारों का आविर्भाव अपने आप होता है। उक्ति की स्वाभाविकता और कौशल

दर्शनीय हैं। रस की पूर्णता सर्वत्र व्याप्त है। उनके वर्णन बड़े सजीव और आकर्षक हैं। उनकी भाषा मे सुखद स्वाभाविक प्रवाह है।

उनका रामचरित-मानस भारती साहित्य का एक अद्वितीय प्रबंधकाव्य है। उसमें जीवन और जगत् के सब अंगों का चित्रण है। मानस में ज्ञान, भक्ति, वैराग्य की विमल त्रिवेणी का प्रवाह है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के आदर्श उसमें उपस्थित हैं। दर्शन शास्त्र के अगाध ज्ञान के साथ-साथ कवि लौकिक जीवन और व्यवहार की पूर्ण जानकारी का परिचय देता है। महान् जीवन के संदेशों और दैनिक चुटीली उक्तियों से ग्रन्थ भरा पड़ा है। जहाँ विद्वान् उसमें दार्शनिक गम्भीरता और भावों की असीम विविधता से चकित होते हैं वहाँ साधारण पाठक उसमें एक विचित्र आत्मसंतोष और सहृदयता का अनुभव करते हैं। गोस्वामीजी की लेखनी से जो कुछ भी निकला है वह आत्मा के सत्य और अनुभूत की छाप लिये है। रामचरित-मानस का सारे देश में घर-घर प्रचार है। इसमें सात काण्ड हैं और प्रत्येक काण्ड के आरम्भ में मंगलाचरण के श्लोक संस्कृत में हैं। इसका कथानक—रामकथा—पौराणिक और प्राचीन है। तुलसीदास ने इसे अपने अन्तःकरण के सुख के लिए रचा था, किन्तु उनके अन्तः-करण का सुख लोक-मंगल में है। उनका 'रामराज्य' आदर्श सुखी सम्पन्न संसार का चित्र है। प्रधानतः रामकथा होते हुए भी इसमें बहुत सी प्रासंगिक कथाएँ आ गई हैं। महाकाव्य में प्रबंध-पटुता, चरित्र-सृष्टि, भाव-व्यंजना, काव्य-सौंदर्य आदि समस्त गुणों का ऊँचा से ऊँचा रूप मिलता है।

'कवितावली' तुलसीदास का दूसरा ग्रन्थ है जो रामकथा को

लेकर चला है। मानस मे जिन प्रसंगो का विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं हो सका है उनका इसमें विशद वर्णन है। यह भी सात काण्डों में विभाजित है, किन्तु इसमें अधिकांश कवित्त और सवैया छंदों का प्रयोग हुआ है। इसके उत्तरकाण्ड में कवि ने सिद्धान्त, राम-भक्ति-महत्त्व, आत्म-परिचय तथा तत्कालीन देश-दशा का वर्णन किया है। इस मुक्तक काव्य में जहाँ एक ओर बाल-लीला और वन-गमन में माधुर्य भरा है वहाँ दूसरी ओर लंका-दहन और पराक्रम के वर्णनों में ओज की छटा है। कवि का छंद कौशल और अलंकार-योजना बहुत ही सुन्दर है।

'गीतावली' में रामकथा का क्रमबद्ध वर्णन गीतों में है। इसके अन्तिम काण्ड में श्रीरामचन्द्र के जीवन की झाँकी और सीता-परित्याग का वर्णन कई छन्दों में किया गया है। राम का जन्मोत्सव, बाल-सौन्दर्य और चित्रकूट का प्रकृति-वर्णन बड़े ही मनोरम है। मानस के अतिरिक्त इसमे कई नये प्रसंग आये हैं, किन्तु इसकी उक्तियों की कई स्थलों पर पुनरावृत्ति हुई है।

तुलसीदास की प्रसिद्ध 'दोहावली' में पाँच सौ से ऊपर दोहे और कुछ सोरठे हैं। इनमे कवि के रामभक्ति-सम्बन्धी सिद्धान्त, आत्म-विश्वास-विषयक विचार तथा देश की तत्कालीन दशा का चित्रण है। इनके संकलन में कोई क्रम नहीं। चातक और मीन प्रेम के दोहे बडे ही भावपूर्ण और हृदयग्राही हैं। इसमें अपने समय की प्रचलित काव्य-पद्धति को अपनाकर कवि ने साहित्य की परम्परा की रक्षा की है।

'विनयपत्रिका' कवि का सर्वथा अनूठा ग्रन्थ है। इसमें कवि ने

महाराज रामचन्द्र के दरबार में कलियुग के प्रकोप के विरुद्ध विनय-पत्रिका भेजी है। कवि ने आत्म-निवेदन और लौकिक अराजकता, अव्यवस्था और अत्याचारों के प्रति फरियाद की है। कवि ने अपनी दीनता बड़े द्रावक ढंग से प्रदर्शित की है। आत्म-दोष-निवेदन की यह शैली भक्तकवियों की अपनी वस्तु है। इसकी भाषा में बड़ा तीव्र प्रवाह और उच्च कोटि का पद-लालित्य है। कहीं संस्कृत-समास-प्रधान शैली है तो कहीं 'वहता नीर' सी भाषा की कोमल पदावली। इसमें संगीतात्मकता और राग-रागिनियों का पालन अनुपम है।

इनके अतिरिक्त तुलसी के अन्य काव्यग्रन्थ भी हैं। आपकी सभी कृतियों ने मुगलों के अत्याचारों से पीड़ित और दलित जनता में नई आशा और आन्तरिक बल का संचार किया था। इसी से आप न केवल कवि-कुल-शिरोमणि हैं, वरन् धर्म-संस्थापक भी।

—:०:—

रामचरित-मानस

वंदना

सो०—जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबर बदन ।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन ॥
मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन ।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन ॥
नील सरोरुहस्याम तरुन अरुन बारिज नयन ।
करउ सो मम उर धाम सदा छीर सागर सयन ॥
कुंद इंदु सम देह उमा रमन करुना अयन ।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन ॥
बंदउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नररूप हरि ।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर ॥

सतीमोह

एक बार त्रेता जुग माहीं । संभु गए कुंभज रिषि पाहीं ॥
संग सती जगजननि भवानी । पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी ॥
रामकथा मुनिबर्ज बखानी । सुनी महेस परम सुखु मानी ॥
रिषि पूछी हरिभगति सुहाई । कही संभु अधिकारी पाई ॥

कहत सुनत रघुपति गुन गाथा । कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा ॥
मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी । चले भवन सँग दच्छकुमारी ॥
तेहि अवसर भंजन महिभारा । हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा ॥
पिता बचन तजि राजु उदासी । दंडक बन बिचरत अबिनासी ॥
दो०—हृदयँ बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ ॥
सो०—संकर उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ ।
तुलसी दरसन लोभु मनडरु लोचन लालची ॥
रावन मरन मनुज कर जाँचा । प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साँचा॥
जौं नहि जाउँ रहइ पछितावा । करत बिचारु न बनत बनावा॥
एहि बिधि भए सोचबस ईसा । तेही समय जाइ दससीसा ॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा । भयउ तुरत सोइ कपट कुरंगा ॥
करि छलु मूढ़ हरी बैदेही । प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही ॥
मृग बधि बंधु सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जल छाए ॥
बिरह बिकल नर इव रघुराई । खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई ॥
कबहूँ जोग बियोग न जाकें । देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें ॥
दो०—अति बिचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान ।
जे मतिमंद बिमोह बस हृदयँ धरहिं कछु आन ॥
संभु समय तेहि रामहि देखा । उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा ॥
भरि लोचन छबिसिंधु निहारा । कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारा॥
जय सच्चिदानंद जग पावन । अस कहि चलेउ मनोज नसावन।

गएँ = मेरे जाने से ।

चले जात सिव सती समेता। पुनि-पुनि पुलकत कृपानिकेता॥
सती सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी॥
संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥
तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥
भए मगन छवि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी॥

दो०—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी॥
संभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्बग्य जान सबु कोई॥
अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा॥
जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी॥
सुनहु सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ उर काऊ॥
जासु कथा कुंभज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥

छं०—मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ रामु व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी॥

बिरज=राग रहित। अकल=कला रहित। अनीह=इच्छा रहित। निकाय=समुदाय।

सो०—लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु ।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जिय ॥
जौं तुम्हरें मन अति संदेहू । तौ किन जाइ परीछा लेहू ॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं । जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं॥
जैसें जाइ मोह भ्रम भारी । करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी ॥
चलीं सती सिव आयसु पाई । करहिं बिचारु करौं का भाई ॥
इहाँ संभु अस मन अनुमाना । दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना ॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं । बिधि बिपरीत भलाई नाहीं ॥
होइहि सोइ जो राम रचि राखा । को करि तर्क बढ़ावै साखा ॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा । गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा ॥
दो०—पुनि पुनि हृदयँ विचारु करि धरि सीता कर रूप ।
आगें होइ चलि पंथ तेहि जेहिं आवत नरभूप ॥
लछिमन दीख उमाकृत बेषा । चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा ॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा । प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा ॥
सती कपटु जानेउ सुरस्वामी । सबदरसी सब अंतरजामी ॥
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना । सोइ सरबग्य रामु भगवाना ॥
सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ । देखहु नारि सुभाउ प्रभाऊ ॥
निज माया बलु हृदयँ बखानी । बोले बिहसि रामु मृदु बानी ॥
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू । पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू । बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥
दो०—राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु ।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदय बड़ सोचु ॥

मैं संकर कर कहा न माना । निज अग्यानु राम पर आना ॥
जाइ उतरु अब देहउँ काहा । उर उपजा अति दारुन दाहा ॥
जाना राम सती दुखु पावा । निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा ॥
सती दीख कौतुक मग जाता । आगे रामु सहित श्री भ्राता ॥
फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा । सहित बंधु सिय सुन्दर बेषा ॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना । सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना ॥
देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका । अमित प्रभाउ एक तें एका ॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा । बिबिध बेष देखे सब देवा ॥

दो०—सती बिधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप ।
जेहिं जेहिं बेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप ॥

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते । सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते ॥
जीव चराचर जो संसारा । देखे सकल अनेक प्रकारा ॥
पूजहिं प्रभुहिं देव बहु बेषा । राम रूप दूसर नहिं देखा ॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे । सीता सहित न बेष घनेरे ॥
सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता । देखि सती अति भई सभीता ॥
हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं । नयन मूदि बैठीं मग माहीं ॥
बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी । कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी ॥
पुनि पुनि नाइ राम पद सीसा । चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा ॥

दो०—गईं समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात ।
लीन्हि परीछा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात ॥

सतीं समुझि रघुबीर प्रभाऊ । भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ ॥

श्री = लक्ष्मी, सीता ।

कछु न परीछा लीन्ह गोसाईं । कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं ॥
जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई । मोरे मन प्रतीति अति सोई ॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना । सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना ॥
बहुरि राममायहि सिरु नावा । प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा ॥
हरि इच्छा भावी बलवाना । हृदयँ बिचारत संभु सुजाना ॥
सतीं कीन्ह सीता कर बेषा । सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा ॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती । मिटइ भगति पथु होइ अनीती ॥
दो०—परम पुनीत न जाइ तजि किएँ प्रेम बड़ पापु ।
प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदयँ अधिक संतापु ॥
तब संकर प्रभु पद सिरु नावा । सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा ॥
एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं । सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं ॥
अस बिचारि संकरु मतिधीरा । चले भवन सुमिरत रघुबीरा ॥
चलत गगन भै गिरा सुहाई । जय महेस भलि भगति दृढ़ाई ॥
अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना । राम भगत समरथ भगवाना ॥
सुनि नभगिरा सती उर सोचा । पूछा सिवहि समेत सकोचा ॥
कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला । सत्यधाम प्रभु दीनदयाला ॥
जदपि सतीं पूछा बहु भाँती । तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती ॥
दो०—सतीं हृदयँ अनुमान किय सबु जानेउ सर्बग्य ।
कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य ॥
सो०—जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि ।
बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि ॥

रसु = स्वाद ।

हृदयँ सोचु समुझत निज करनी। चिंता अमित जाइनहिं बरनी ॥
कृपासिंधु सिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा ॥
संकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभुमोहितजेउहृदयँअकुलानी ॥
निजअघसमुझिनकछुकहिजाई। तपइ अवाँ इव उर अधिकाई ॥
सतिहि ससोच जानि वृषकेतू। कही कथा सुंदर सुख हेतू ॥
बरनत पंथ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा ॥
तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन। बैठे बट तर करि कमलासन ॥
संकर सहज सरूप सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा ॥
दो०—सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं।
मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सिराहिं ॥

शिव-बारात

सिवहिं संभुगन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा ॥
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला ॥
ससि ललाट सुन्दर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा ॥
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला ॥
कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसहँ चढ़ि बाजहिंबाजा ॥
देखि सिवहिं सुरत्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं ॥
बिष्नु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता ॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा ॥

सिव धाम=कल्याण के घर। बसहँ=बैल।

दो०—बिष्नु कहा अस बिहँसि तब बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज॥
बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई॥
बिष्नु बचन सुनि सुरमुसुकाने। निजनिज सेनसहित बिलगाने॥
मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं। हरि के बिंग्य बचन नहिं जाहीं॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृङ्गिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥
सिव अनुसासन सुनि सब आए। प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाए॥
नाना बाहन नाना बेषा। बिहँसे सिव समाज निज देखा॥
कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू। बिनु पदकर कोउ बहु पद बाहू॥
बिपुलनयनकोउनयनबिहीना। रिष्टपुष्टकोउ अति तन खीना॥
छं०—तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें॥
खर स्वान सुअर सृकालु मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै॥
सो०—नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत बोलहिं बचन बिचित्र बिधि॥
जस दूलहु तसि बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिंमग जाता॥
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना॥
सैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु बिसाल नहिंबरनिसिराहीं॥
बन सागर सब नदी तलावा। हिमगिर सब कहुँ नेवत पठावा॥

बिंग्य=व्यंग। भृङ्गिहि=शिवजी का एक गण। सद्य सोनित=ताजा खून। जिनस=प्रकार।

कामरूप सुन्दर तन धारी । सहित समाज सहित वर नारी ॥
गए सकल तुहिनाचल गेहा । गावहिं मंगल सहित सनेहा ॥
प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए । जथाजोगु तहँ तहँ सब छाए ॥
पुर सोभा अवलोकि सुहाई । लागइ लघु बिरंचि निपुनाई ॥

छं०—लघु लाग विधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही ।
वन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही ॥
मंगल बिपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं ।
बनिता पुरुष सुन्दर चतुर छवि देखि मुनि मन मोहहीं ॥

दो०—जगदंबा जहँ अवतरी सो पुरु बरनि कि जाइ ।
रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख नित नूतन अधिकाइ ॥

नगर निकट बरात सुनि आई । पुर खरभरु सोभा अधिकाई ॥
करि बनाव सजि बाहन नाना । चले लेन सादर अगवाना ॥
हियँ हरषे सुर सेन निहारी । हरिहिं देखि अति भए सुखारी ॥
सिव समाज जब देखन लागे । बिडरि चले बाहन सब भागे ॥
धरि धीरजु तहँ रहे सयाने । बालक सब लै जीव पराने ॥
गएँ भवन पूछहिं पितु माता । कहहिं बचन भयकंपित गाता ॥
कहिअ काह कहि जाइ न बाता । जमकर धार किधौं बरि आता ॥
बरु बौराह बसहँ असवारा । ब्याल कपाल बिभूषन छारा ॥

छं०—तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा ।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा ॥

धार=सेना ।

जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहिकर सही ॥
देखिहि सोउमाविबाहु घर घर बात असि लरिकन्ह कही ॥

दो०–समुझि महेस समाज सब जननि जनक मुसुकाहिं ।
बाल बुझाए बिबिध बिधि निडर होहु डरु नाहिं ॥

लै अगवान बरातहिं आए । दिए सबहिं जनवास सुहाए ॥
मैनाँ सुभ आरती सँवारी । संग सुमंगल गावहिं नारी ॥
कंचन थार सोह बर पानी । परिछन चली हरहि हरषानी ॥
बिकट बेष रुद्रहिं जब देखा । अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा ॥
भागि भवन पैठीं अति त्रासा । गए महेसु जहाँ जनवासा ॥
मैना हृदयँ भयउ दुखु भारी । लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी ॥
अधिक सनेहँ गोद बैठारी । स्याम सरोज नयन भरे बारी ॥
जेहिंबिधितुम्हहिरूपुअसदीन्हा । तेहिंजड़बरुबाउरकस कीन्हा ॥

छं०–कस कीन्ह बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुन्दरता दई ।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई ॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं ।
घर जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं ॥

पृथ्वी–देवतादि की करुण पुकार

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा । जे लंपट परधन परदारा ॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा । साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी । ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ॥

अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी । परम सभीत धरा अकुलानी ॥
गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही । जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥
सकल धर्म देखइ बिपरीता । कहि न सकइ रावन भय भीता ॥
धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी । गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी ॥
निज संताप सुनाएसि रोई । काहू तें कछु काज न होई ॥

छं०—सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका ।
सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका ॥
ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई ।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई ॥

सो०—धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरिपद सुमिरु ।
जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन बिपति ॥

बैठे सुर सब करहिं बिचारा । कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा ॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई । कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई ॥
जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती । प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती ॥
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ । अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ ॥
हरि ब्यापक सर्बत्र समाना । प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥
अग जगमय सब रहित बिरागी । प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ॥
मोर बचन सब के मन माना । साधु साधु करि ब्रह्म बखाना ॥
दो०—सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर ।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मतिधीर ॥

छं०—जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता ।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता ॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई ।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई ॥
जय जय अबिनासी सब घट बासी व्यापक परमानंदा ।
अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा ॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगतमोह मुनिबृंदा ।
निसि बासर ध्यावहिं गुन-गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा ॥
जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा ।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा ॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा ।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा ॥
सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना ।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना ॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा ।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा ॥

दो०—जानि समय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह ।
गगनगिरा गभीर भइ हरनि सोक संदेह ॥

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा । तुम्हहि लागि धरिहउँ नरबेसा ॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा । लेहउँ दिनकर बंस उदारा ।
कस्यप अदिति महातप कीन्हा । तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा ॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा । कोसलपुरी प्रगट नरभूपा ।

तिन्ह के गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुलतिलक सो चारिउ भाई॥
नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥
गगन ब्रह्मबानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना॥
तब ब्रह्माँ धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जियँ आवा॥
दो०—निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ॥

रामजन्म

छं०—भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनंता॥
करुना सुखसागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥

कथा=कौसल्या के पूर्व जन्म की कथा।

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा ॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ॥

दो०--बिप्र धेनु सुर संत हित लीन मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार ॥

परशुराम-लक्ष्मण-संवाद

समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए ॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चाप खंड महि डारे ॥
अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा ॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटउँ महि जहँ लगि तव राजू ॥
अति डरु उतरु देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं ॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी ॥
मन पछिताति सीय महतारी। बिधि अब सँवरी बात बिगारी ॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अरध निमेष कलप सम बीता ॥

दो०—सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु।
हृदयँ न हरषु बिषादु कछु बोले श्रीरघुबीरु ॥

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा ॥
आयसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही ॥
सेवक सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई ॥

सुनहु राम जेहि सिवधनु तोरा । सहसबाहु सम सो रिपु मोरा ॥
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा । न त मारे जैहहिं सब राजा ॥
सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने । बोले परसुधरहि अपमाने ॥
बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं । कबहुँ न असि रिसि कीन्हि गोसाईं ॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू । सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू ॥

दो०—रे नृपबालक कालबस बोलत तोहि न सँभार ।
धनुही सम तिपुरारि धनु बिदित सकल संसार ॥

लखन कहा हँसि हमरें जाना । सुनहु देव सब धनुष समाना ॥
का छति लाभु जून धनु तोरें । देखा राम नयन के भोरें ॥
छुअत टूट रघुपतिहि न दोसू । मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू ॥
बोले चितइ परसु की ओरा । रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा ॥
बालकु बोलि बधउँ नहिं तोही । केवल मुनि जड़ जानहि मोही ॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही । बिस्व बिदित छत्रियकुल द्रोही ॥
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही । बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा । परसु बिलोकु महीपकुमारा ॥
दो०—मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीस किसोर ।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर ॥

बिहसि लखनु बोले मृदु बानी । अहो मुनीसु महा भटमानी ॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू । चहत उड़ावन फूँकि पहारू ॥
इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं । जे तरजनी देखि मरि जाहीं ॥

जून=पुराना । नयन के भोरें=नवीन के धोखे से । अर्भक=शिशु ।

देखि कुठारु सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना॥
भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउँ रिस रोकी।
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरें कुल इन्ह पर न सुराई॥
बधें पापु अपकीरति हारे। मारतहूँ पा परिअ तुम्हारें॥
कोटिकुलिससम बचनु तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥
दो०—जो बिलोकि अनुचित कहेउँ छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोप भृगुबंसमनि बोले गिरा गभीर॥
कौसिक सुनहु मंद यहु बालकु। कुटिलकालबस निजकुलघालकु॥
भानु बंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू॥
काल कवलु होइहि छन माहीं। कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥
तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा॥
लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा॥
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥
नहिं संतोषु त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू।
बीर ब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा॥
दो०—सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आप।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु॥
तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा॥
सुनत लखन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥
अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू। कटुबादी बालकु बधजोगू॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यहु मरनिहार भा साँचा॥
कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू॥

खर कुठार मैं अकरुन कोही। आगें अपराधी गुरुद्रोही॥
उतर देत छोडउँ विनु मारें। केवल कौसिक सील तुम्हारे॥
न त एहि काटि कुठार कठोरे। गुरुहि उरिन होतेउँ श्रम थोरे॥

दो०—गाधिसूनु कह हृदयँ हँसि मुनिहि हरिअरइ सूझ।
अयमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ॥

कहेउ लखन मुनि सील तुम्हारा। को नहिं जान विदित संसारा॥
माता पितहि उरिन भए नीके। गुरु रिनु रहा सोचु बंड़ जीकें॥
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गए ब्याज बड़ बाढ़ा॥
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली॥
सुनि कटु वचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा॥
भृगुवर परसु देखावहु मोही। विप्र विचारि बचउँ नृपद्रोही॥
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सयनहिं लखनु नेवारे॥

दो०—लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु।
बढ़त देखि, जल सम बचन बोले रघुकुल भानु॥

नाथ करहु वालक पर छोहू। सूध दूधमुख करिअ न कोहू॥
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करत अयाना॥
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुर पितु मातु मोद मन भरहीं॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी। तुम्ह सम सील धीर मुनिग्यानी॥
राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखनु बहुरि मुसुकाने॥

अयमय=फौलाद की बनी हुई। खाँड़=(श्लेष) तलवार, शक्कर। ब्यवहरिया=हिसाब करनेवाला।

हँसत देखि नख सिख रिस ब्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी॥
गौर सरीर स्याम मन माही। कालकूटमुख पयमुख नाहीं॥
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। नीचु मीचु सम देख न मोही॥

दो०—लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं विस्व प्रतिकूल॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोपु करिअ अब दाया॥
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने। बैठिअ होइहिं पाय पिराने॥
जौं अति प्रिय तो करिअ उपाई। जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई॥
बोलत लखनहि जनकु डेराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं॥
थर थर काँपहिं पुर नर नारी। छोट कुमार खोट बड़ भारी॥
भृगुपति सुनि सुनि निरभय बानी। रिस तन जरइ होइ बल हानी॥
बोले रामहि देइ निहोरा। बचउँ बिचार बंधु लघु तोरा॥
मनु मलीन तनु सुन्दर कैसे। बिष रस भरा कनक घटु जैसे॥

दो०—सुनि लछिमन बिहसे बहुरि नयन तरेरे राम।
गुर समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम॥

लक्ष्मण का माता से बिदा माँगना

माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भए सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥
हरषित हृदयँ मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए॥

मष्ट करहु=चुप रहिए।

जाइ जननि पग नायउ माथा । मनु रघुनंदन जानकि साथा ॥
पूँछे मातु मलिन मन देखी । लखन कही सब कथा बिसेषी ॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा । मृगी देखि दव जनु चहु ओरा ॥
लखन लखेउ भा अनरथ आजू । एहिं सनेह बस करब अकाजू ॥
मागत बिदा समय सकुचाहीं । जाइ संग बिधिकहिहि कि नाहीं ॥
दो०--समुझि सुमित्राँ राम सिय रूपु सुसीलु सुभाउ ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ ॥
धीरजु धरेउ कुअवसर जानी । सहज सुहृद बोली मृदु बानी ॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही । पिता रामु सब भाँति सनेही ॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू । तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं । अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ॥
गुर पितु मातु बंधु सुर साईं । सेइअहिं सकल प्रान की नाईं ॥
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के । स्वारथ रहित सखा सबही के ॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते । सब मानिअहिं राम के नाते ॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू । लेहु तात जग जीवन लाहू ॥
दो०--भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ ।
जौं तुम्हरे मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ ॥
पुत्रवती जुवती जग सोई । रघुपति भगतु जासु सुत होई ॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी । राम बिमुख सुततें हित जानी ॥
तुम्हरेहि भाग रामु बन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू । राम सीय पद सहज सनेहू ॥

दव = दावाग्नि । बादि = व्यर्थ ।

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू । जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू । सँग पितु मातु रामु सिय जासू ॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू । सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ॥

छं०--उपदेसु यह जेहि तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं ।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं ॥
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई ।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई ॥

सो०--मातु चरन सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदयँ ।
बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग बस ॥

जटायु रावण-युद्ध

हा जग एक बीर रघुराया । केहिं अपराध बिसारेहु दाया ॥
आरति हरन सरन सुखदायक । हा रघुकुल सरोज दिननायक ॥
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा । सो फलु पायउँ कीन्हेउ रोसा ॥
बिबिध बिलाप करति बैदेही । भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही ॥
बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा । पुरोडास चह रासभ खावा ॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी । भए चराचर जीव दुखारी ॥
गीधराज सुनि आरत बानी । रघुकुल तिलक नारि पहिचानी ॥
अधम निसाचर लीन्हें जाई । जिमि मलेछ बस कपिला गाई ॥

बागुर = फंदा पुरोडास = यज्ञ का अन्न ।

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउँ जातुधान कर नासा॥
धावा क्रोधवंत खग कैसे। छूटइ पबि परबत कहुँ जैसें॥
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही॥
आवत देखि कृतांत समाना। फिरि दसकंधर कर अनुमाना॥
की मैनाक कि खगपति होई। ममबल जानि सहित पति सोई॥
जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा॥
सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावन मोर सिखावा॥
तजि जानकिहि कुशल गृह जाहू। नाहिं त अस होइहि बहुबाहू॥
राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा॥
उतरु न देत दसानन जोधा। तबहिं गीध धावा करि क्रोधा॥
धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहिं राखि गीध पुनि फिरा॥
चोचन्ह मारि बिदारेसि देही। दंड एक भई मुरुछा तेही॥
तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना॥
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अद्भुत करनी॥
सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी॥
करति बिलाप जाति नभ सीता। ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता॥
गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी॥
एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ। बन असोक महँ राखत भयऊ॥
दो०--हारि परा खल बहु बिध भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ॥

पबि = वज्र। कृतांत = यमराज। सलभ = पतिंगा। कच = बाल। बिरथ = रथ रहित।

ऋतु-वर्णन

सुंदर वन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा॥
कंद मूल फल पत्र सुहाए। भए बहुत जब ते प्रभु आए॥
देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुजसहित सुरभूपा॥
मधुकर खग मृग तन धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा॥
मंगलरूप भयउ वन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते॥
फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई॥
कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरति नृपनीति बिबेका॥
बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए॥

दो०—लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नुभगत कहुँ देखि॥

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥
दामिनि दमक रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ।
बूँद अघात सहहिं गिर कैसे। खल के बचन संत सह जैसें॥
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई॥
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी॥
समिटिसमिटिजलभरहिंतलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिवहरि पाई॥

ढाबर = गँदला। अचल = आवागमन से मुक्त।

दो०—हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बिबाद ते गुप्त होहिं सदग्रंथ॥

दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका॥
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी॥
ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा॥
महावृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना! जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥
देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊपर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा॥
बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रियगन उपजे ग्याना॥

दो०—कबहु प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहि॥
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई॥

अर्क=मदार। ससि = अन्न। पतंग = सूर्य।

उदित अगस्ति पंथ जल सोहा । संत हृदय जस गत मद मोहा ॥
रस रस सूख सरित सर पानी । ममतात्यागकरहिं जिमि ग्यानी ॥
जानि सरद रितु खंजन आए । पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए ॥
पंक न रेनु सोह असि धरनी । नीति निपुन नृप कै जसि करनी ॥
जल संकोच बिकल भइँ मीना । अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना ॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा । हरिजन इव परिहरि सब आसा ॥
कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी । कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी ॥

दो०—चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि ।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि ॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा । जिमि हरि सरन न एकउ बाधा ॥
फूले कमल सोह सर कैसा । निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा ॥
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा । सुन्दर खग रव नाना रूपा ॥
चक्रबाक मन दुख निसि पेखी । जिमि दुर्जन पर संपति देखी ॥
चातक रटत तृषा अति ओही । जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही ॥
सरदातप निसि ससि अपहरई । संत दरस जिमि पातक टरई ॥
देखि इन्दु चकोर समुदाई । चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई ॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा । जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा ॥

दो०—भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ ।
सदगुर मिले जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ ॥

भूमि जीव संकुल रहे—वर्षा के कारण पृथ्वी में भर गए जीव।

विभीषण का रावण को समझाना

अवसर जानि विभीषनु आवा । भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा ॥
पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन । बोला बचन पाइ अनुसासन ॥
जौं कृपाल पूँछिहु मोहि बाता । मति अनुरूप कहउँ हित ताता ॥
जो आपन चाहै कल्याना । सुजसु सुमति सुभगति सुखनाना ॥
सो परनारि लिलार गोसाईं । तजउ चउथि के चंद की नाईं ॥
चौदह भुवन एक पति होई । भूतद्रोह तिष्ठइ नहिं सोई ॥
गुन सागर नागर नर जोऊ । अलप लोभ भल कहइ न कोऊ ॥

दो०—काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत ॥

तात राम नहिं नर भूपाला । भुवनेस्वर कालहु कर काला ॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता । ब्यापक अजित अनादि अनंता ॥
गो द्विज धेनु देव हितकारी । कृपासिंधु मानुष तनुधारी ॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता । बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता ॥
ताहि बयरु तजि नाइअ माथा । प्रनतारति भंजन रघुनाथा ॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही । भजहु राम बिनु हेतु सनेही ॥
सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा । बिस्वद्रोह कृत अघ जेहि लागा ॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन । सोइ प्रभु प्रगट समुझु जिय रावन ॥

लिलार=ललाट (मुख) । तिष्ठइ=ठहर सकता । अनामय=निर्विकार ।
ब्राता=समूह ।

दो०—बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस ।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस ॥
मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात ।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसरु तात ॥

माल्यवंत अति सचिव सयाना । तासु बचन सुनि अति सुख माना
तात अनुज तव नीति बिभूषन । सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥
रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ । दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ ॥
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी । कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी ॥
सुमति कुमति सब के उर रहहीं । नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना । जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥
तव उर कुमति बसी बिपरीता । हित अनहित मानहु रिपु प्रीता ॥
कालराति निसिचर कुल केरी । तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ॥

दो०—तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार ।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार ॥

बुध पुरान श्रुति संमत बानी । कही बिभीषन नीति बखानी ॥
सुनत दसानन उठा रिसाई । खल तोहि निकट मृत्यु अब आई॥
जिअसि सदा सठ मोर जिआवा । रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा॥
कहसि न खल अस को जग माहीं । भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं॥
मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती । सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा । अनुज गहे पद बारहिं बारा॥
उमा संत कइ इहइ बड़ाई । मंद करत जो करइ भलाई ॥

तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहिं मारा। रामु भजे हित नाथ तुम्हारा ॥
सचिव संग लै नभ पथ गयऊ । सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ॥

दो०—रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि ।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि ॥

विभीषण का राम की शरण में जाना

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । आवा मिलन दसानन भाई ॥
कह प्रभु सखा बूझिए काहा । कहइ कपीस सुनहु नरनाहा ॥
जानि न जाइ निसाचर माया । कामरूप केहि कारन आया ॥
भेद हमार लेन सठ आवा । राखिअ बाँधि मोहिं अस भावा॥
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी ॥
सुनि प्रभु वचन हरप हनुमाना । सरनागत बच्छल भगवाना ॥

दो०—सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि ॥

कोटि विप्र बध लागहिं जाहू । आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
पापवंत कर सहज सुभाऊ । भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जो पै दुष्टहृदय सोइ होई । मोरें सनमुख आव कि सोई ॥
निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥
भेद लेन पठवा दससीसा । तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥

जग महुँ सखा निसाचर जेते । लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते ॥
जौं सभीत आवा सरनाईं । रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं ॥

दो०—उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत ।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत ॥

सादर तेहि आगें करि वानर । चले जहाँ रघुपति करुनाकर ॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता । नयनानंद दान के दाता ॥
बहुरि राम छबिधाम बिलोकी । रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी ॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन । स्यामल गात प्रनत भय मोचन ॥
सिंघ कंध आयत उर सोहा । आनन अमित मदन मन मोहा ॥
नयन नीर पुलकित अति गाता । मन धरि धीर कही मृदु बाता ॥
नाथ दसानन कर मैं भ्राता । निसिचर बंस जनम सुरत्राता ॥
सहज पापप्रिय तामस देहा । जथा उलूकहि तम पर नेहा ॥

दो०—श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर ।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर ॥

अस कहि करत दंडवत देखा । तुरत उठे प्रभु हरष बिसेखा ॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा ॥
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी । बोले बचन भगत भयहारी ॥
कहु लंकेस सहित परिवारा । कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥
खल मंडली बसहु दिनु राती । सखा धरम निबहइ केहि भाँती ॥
मै जानउँ तुम्हार सब रीती । अति नय निपुन न भाव अनीती ॥

नय=नीति ।

बरु भल बास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देइ विधाता ॥
अब पद देखि कुसल रघुराया । जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया ॥
दो०—तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम ॥
तब लगि हृदय बसत खल नाना । लोभ मोह मच्छर मद माना ॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरें चाप सायक कटि भाथा ॥
ममता तरुन तमी अँधिआरी । राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं । जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं ॥
अब मैं कुसल मिटे भय भारे । देखि राम पद कमल तुम्हारे ॥
तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला । ताहि न व्याप त्रिबिध भवसूला ॥
मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ । सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा । तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा ॥
दो०—अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज ।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पद कंज ॥
सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ । जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही । आवै सभय सरन तकि मोही ॥
तजि मद मोह कपट छल नाना । करउँ सद्य तेहि साधु समाना ॥
जननी जनक बंधु सुत दारा । तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ॥
सब कै ममता ताग बटोरी । मम पद मनहि बाँध बरि डोरी ॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं । हरष सोक भय नहिं मन माहीं ॥

भाथा=तरकस । त्रिविध=तीन प्रकार के (आध्यात्मिक, आधि-दैविक, आदि भौतिक) । सद्य=शीघ्र ।

अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें ॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरे। धरउँ देह नहिं आन निहोरे ॥

दो०—सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम ॥

सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें ॥
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरूथा ॥
सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी ॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा ॥
सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी ॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही ॥
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी ॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा ॥
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं ॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा ॥

दो०—रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड ॥
जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दसमाथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥

बरूथा=राशि, समूह। निज=अपनी (विभीषण की)

अंगद-रावण-संवाद

बंदि चरन उर धरि प्रभुताई । अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई ॥
प्रभु प्रताप उर सहज असंका । रन बाँकुरा बालिसुत बंका ॥
पुर पैठत रावन कर बेटा । खेलत रहा सो होइ गै भेटा ॥
बातहिं बात करप बढ़ि आई । जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई ॥
तेहिं अंगद कहुँ लात उठाई । गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई ॥
निसिचर निकर देखि भट भारी । जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी ॥
एक एक सन मरमु न कहहीं । समुझि तासु बध चुप करि रहहीं ॥
भयउ कोलाहल नगर मझारी । आवा कपि लंका जेहिं जारी ॥
अब धौं कहा करिहि करतारा । अति सभीत सब करहिं बिचारा ॥
बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई । जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई ॥

दो०——गयउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज ।
सिंह ठवनि इत उत चितव धीर बीर बल पुंज ॥

तुरत निसाचर एक पठावा । समाचार रावनहिं जनावा ॥
सुनत बिहँसि बोला दससीसा । आनहु बोलि कहाँ कर कीसा ॥
आयसु पाइ दूत बहु धाए । कपिकुंजरहि बोलि लै आए ॥
अंगद दीख दसानन बैसें । सहित प्रान कज्जलगिरि जैसे ॥
भुजा बिटप सिर सृङ्ग समाना । रोमावली लता जनु नाना ॥
मुख नासिका नयन अरु काना । गिरि कंदरा खोह अनुमाना ॥

करप=झगड़ा । ठवनि=ऐंठ, शान ।

गयउ सभाँ मन नेकु न मुरा। बालितनय अतिबल बाँकुरा ॥
उठे सभासद कपि कहुँ देखी। रावन उर भा क्रोध बिसेषी ॥

दो०—जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ।
रामप्रताप सुमिरि मन बैठ सभाँ सिरु नाइ ॥

कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर ॥
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयउँ भाई ॥
उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती ॥
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा ॥
नृप अभिमान मोह बस किंवा। हरि आनिहु सीता जगदंबा ॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा ॥
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी ॥
सादर जनकसुता करि आगे। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें ॥

दो०—प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगे तोहि ॥

रे कपिपोत, बोलु संभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी ॥
कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नातें मानिऐ मिताई ॥
अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुँ भई ही भेटा ॥
अंगद बचन सुनत सकुचाना। रहा बालि बानर मैं जाना ॥
अंगद तहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुल घालक ॥
गर्भ न गयहु ब्यर्थ तुम्ह जायहु। निज मुख तापस दूत कहायहु ॥

पंचानन=सिंह ।

अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि वचन तब अंगद कहई॥
दिन दस गएँ बालि पहिं जाई। बूझेहु कुसल सखा उर लाई॥
राम बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई॥
सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्री रघुबीर हृदय नहिं जाके॥
दो०—हम कुलघालक सत्य तुम्ह कुलपालक दससीस।
अधउ बधिर न अस कहहिं नयन कान तव बीस॥
सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। अइसिहुँ मति उर बिहर न तोरा॥
सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी॥
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मैं जानत अहऊँ॥
कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी॥
देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्म ब्रतधारी॥
कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्हि तुम्ह धर्म बिचारी॥
धर्मसीलता तव जग जागी। पावा दरसु हमहुँ बड़भागी॥
दो०—जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल सिन ग्रसन हेतु सब राहु॥
पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास।
सोभत भयउ मराल इव संभु सहित कैलास॥
तुम्हरे कटक माझ सुनु अंगद। मो सन भिरहि कवन जोधा बद॥
तव प्रभु नारि बिरहँ बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥

जनि जल्पसि=बकबक मत कर।

जामवंत मंत्री अति बूढ़ा । सो कि होइ अब समरारूढ़ा ॥
सिल्पि कर्म जानहिं नल नीला । है कपि एक महा बलसीला ॥
आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा । सुनत बचन कह बालिकुमारा ॥
सत्य बचन कहु निसिचरनाहा । साँचेहुँ कीस कीन्ह पुर दाहा ॥
रावन नगर अल्प कपि दहई । सुनि अस बचन सत्य को कहई ॥
जो अति सुभट सराहेहु रावन । सो सुग्रीव केर लघु धावन ॥
चलइ बहुत सो बीर न होई । पठवा खबरि लेन हम सोई ॥

दो०—सत्य नगरु कपि जारेउ बिनु प्रभु आयसु पाइ ।
फिरि न गयउ सुग्रीव पहिं तेहि भय रहा लुकाइ ॥
सत्य कहहि दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह ।
कोउ न हमारे कटक अस तो सन लरत जो सोह ॥
प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि ।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि ॥
जद्यपि लघुता राम कहुँ तोहि बधे बड़ दोष ।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र जाति कर रोष ॥
बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ रिपु कीस ।
प्रतिउत्तर सड़सिन्ह मनहु काढ़त भट दससीस ॥
हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक ।
जौ प्रतिपालइ तासु हित करइ उपाय अनेक ॥

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा । जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा ॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई । पति हित करइ धर्म निपुनाई ॥

सड़सिन्ह=संसी से ।

अंगद स्वामिभक्त तव जाती । प्रभुगुनकसनकहसिएहिभाँती॥
मै गुनगाहक परम सुजाना । तववटुरटनिकरउँ नहिंकाना ॥
कह कपि तव गुन गाहकताई । सत्य पवनसुत मोहि सुनाई ॥
वन बिधंसि सुत वधि पुर जारा । तदपिनतेहिंकछुकृतअपकारा ॥
सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई । दसकंधर मैं कीन्हि ढिठाई ॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा । तुम्हरें लाज न रोष न माखा ॥
जौं असि मति पितु खाए कीसा । कहिअसबचन हँसा दससीसा॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही । अबहीं समुझि परा कछु मोही॥
बालि बिमल जस भाजन जानी । हतउँनतोहि अधमअभिमानी॥
कहु रावन रावन जग केते । मैं निज श्रवन सुने सुन जेते ॥
बलिहि जितन एक गयउपताला । राखेउबाँधि सिसुन हयशाला ॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई । दयालागि बलिदीन्हछोड़ाई ॥
एक बहोरि सहसभुज देखा । धाइ धरा जिमि जंतु बिसेखा ॥
कौतुक लागि भवन लै आवा । सो पुलस्त्यमुनि जाइछोड़ावा ॥
दो०—एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की काँख ।
इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख ॥
सुनु सठ सोइ रावन बलसीला । हरगिरि जान जासुभुज लीला ॥
जान उमापति जासु सुराई । पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढ़ाई ॥
सिर सरोज निज करन्हि उतारी । पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी ॥
भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला । सठ अजहूँ जिन्हकें उरशाला ॥
जानहिं दिग्गज उर कठिनाई । जब जब भिरउँ जाइ बरियाई ॥

माख=चिढ़ ।

जिन्ह के दसन कराल न फूटे । उर लागत मूलक इव टूटे ॥
जासु चलत डोलत इमि धरनी । चढ़त मत्तगज जिमि लघुतरनी॥
सोइ रावन जग विदित प्रतापी । सुनेहि न श्रवन अलीकप्रलापी॥
दो०—तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान ।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ग्यान ॥
सुनि अंगद सकोप कह बानी । बोलु सँभारि अधम अभिमानी॥
सहसबाहु भुज गहन अपारा । दहन अनल सम जासु कुठारा॥
जासु परसु सागर खर धारा । बूड़े नृप अगिनित बहु बारा ॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा । सो नर क्यों दससीस अभागा ॥
राम मनुज कस रे सठ बंगा । धन्वी कामु नदी पुनि गंगा ॥
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा । अन्न दान अरु रस पीयूषा ॥
वैनतेय खग अहि सहसानन । चिंतामनि पुनि उपलदसानन॥
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा । लाभकि रघुपतिभगतिअकुंठा॥
दो०—सेन सहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि ।
कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि ॥
सुनु रावन परिहरि चतुराई । भजसि न कृपासिंधु रघुराई ॥
जौं खल भएसि राम कर द्रोही । ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही ॥
मूढ़ वृथा जनि मारसि गाला । राम बयर अस होइहि हाला ॥
तव सिर निकर कपिन्ह के आगें । परिहहिं धरनि रामसर लागें ॥
ते तव सिर कंदुक सम नाना । खेलिहहिं भालु कीस चौगाना ॥
जबहिं समर कोपिहि रघुनायक । छुटिहहिं अति कराल बहु सायक॥

अलीक=झूठ । वैनतेय=गरुड़ । उपल=पत्थर ।

तबकि चलिहि असगाल तुम्हारा । अस बिचारि भजु राम उदारा ॥
सुनत बचन रावन परजरा । जरत महानल जनु घृत परा ॥
दो०—कुम्भकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि ।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेउँ चराचर झारि ॥

सठ साखामृग जोरि सहाई । बाँधा सिंधु इहइ प्रभुताई ॥
नाघहिं खग अनेक बारीसा । सूर न होहिं ते सुनु सब कीसा ॥
मम भुज सागर बल जल पूरा । जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा ॥
बीस पयोधि अगाध अपारा । को अस बीर जो पाइहि पारा ॥
दिगपालन्ह मै नीर भरावा । भूप सुजस खल मोहि सुनावा ॥
जौ पै समर सुभट तव नाथा । पुनिपुनिकहसि जासुगुनगाथा ॥
तौ बसीठ पठवत केहि काजा । रिपुसन प्रीतिकरत नहिं लाजा ॥
हरगिर मथन निरखु मम बाहू । पुनिसठकपिनिजप्रभुहिसराहू ॥
दो०—सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहिं सीस ।
हुने अनल अति हरप बहु बार साखि गौरीस ॥

जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला । बिधिकेलिखे अंकनिजभाला ॥
नर कें कर आपन बध बाँची । हसेउँजानिबिधिगिराअसाँची ॥
सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरें । लिखा बिरंचि जरठ मतिभोरें ॥
आन बीर बल सठ मम आगे । पुनिपुनिकहसिलाजपतित्यागे ॥
कह अंगद सलज्ज जग माहीं । रावन तोहिसमान कोउनाहीं ॥

सक्रारि=इन्द्रजित् मेघनाद । बीस पयोधि=भुजा रूपी बीस सागर । बसीठ=दूत । हुने=होम दिया ।

लाजवंत तव सहज सुभाऊ । निजमुखनिजगुनकहसि नकाऊ ॥
सिर अरु सैल कथा चित रही । तातें बार बीस तैं कही ॥
सो भुज बल राखेहु उर घाली । जीतेहु सहसबाहु बलिबाली ॥
सुनु मतिमंद देहि अब पूरा । काटें सीस कि होइअ सूरा ॥
इंद्रजालि कहुँ कहिय न बीरा । काटइ निज कर सकलसरीरा ॥

दो०—जरहिं पतंग मोह बल भार बहहिं खर बृंद ।
ते नहिं सूर कहावहिं समुझि देखु मतिमंद ॥

राम-विलाप

उहाँ राम लछिमनहि निहारी । बोले बचन मनुज अनुसारी ॥
अर्धराति गई कपि नहिं आयउ । राम उठाइ अनुज उर लायउ ॥
सकहु न दुखितदेखि मोहिकाऊ । बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ ॥
मम हित लागि तजेहु पितुमाता । सहेहु बिपिन हिमआतपबाता ॥
सो अनुराग कहाँ अब भाई । उठहु न सुनिममबच बिकलाई ॥
जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू । पिता बचन मनतेउँ नहिंओहू ॥
सुत वित नारि भवन परिवारा । होहिं जाहिं जग बारहिंबारा ॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता । मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ॥
जथा पंख बिनु खग अति दीना । मनिबिनुफनिकरिबरकरहीना ॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही । जौं जड़ दैव जिआवै मोही ॥
जैहउँ अवध कौन मुह लाई । नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई ॥

कर=सूड़ ।

बरु अपजस सहतेउँ जगमाहीं । नारिहानि बिसेष छति नाहीं ॥
अब अपलोकु सोकु सुत तोरा । सहिहि निठुर कठोर उर मोरा॥
निज जननी के एक कुमारा । तात तासु तुम्ह प्रान अधारा ॥
सौंपेसि मोहितुम्हहि गहिपानी । सब बिधिसुखदपरमहितजानी ॥
उतरु काह दैहउँ तेहि जाई । उठि किन मोहिसिखावहुभाई॥
बहुबिधि सोचतसोच बिमोचन । स्रवत सलिल राजिवदललोचन॥
उमा एक अखंड रघुराई । नर गति भगत कृपाल देखाई ॥

सो०—प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर ।
आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महँ बीर रस ॥

रामराज्य

दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज नहिं काहुहिब्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती । चलहिं स्वधर्मनिरतश्रुतिनीती ॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम भगति रत नर अरु नारी । सकल परमगति के अधिकारी ॥
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा । सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिंकोउअबुध न लच्छनहीना॥
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी । नर अरु नारि चतुर सबगुनी ॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी । सब कृतज्ञ नहिं कपटसयानी ॥

बिरुज=रोग रहित ।

दो०—राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं ।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं ॥

भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू । यह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी । यह बरनत हीनता घनेरी ॥
सोउ महिमा खगेसजिन्हजानी । फिरिएहिंचरिततिन्हहुँरतिमानी ॥
सोउ जाने कर फल यह लीला । कहहिं महा मुनिवर दमसीला ॥
राम राज कर सुख संपदा । वरनि न सकइ फनीस सारदा ॥
सब उदार सब पर उपकारी । विप्र चरन सेवक नर नारी ॥
एकनारि व्रत रत सब झारी । ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥

दो०—दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचन्द्र के राज ॥

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन । रहहिं एक सँग गज पंचानन ॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई । सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई ॥
कूजहिं खग मृग नाना बृन्दा । अभय चरहिं बन करहिं अनंदा ॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा । गुंजत अलि लै चलि मकरंदा ॥
लता विटप मागे मधु चवहीं । मन भावतो धेनु पय स्रवहीं ॥
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी । त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी ॥
प्रकटींगिरिन्हविविधमनिखानी । जगदातमा भूप जग जानी ॥

दंड, भेद और जीतहु—श्लिष्ट पद हैं; दण्ड, भेद—(साम, दाम, दण्ड. भेद) सन्यासियों का दण्ड, अपराध का दण्ड; भेद—सुर-ताल का भेद. भेद नीति; जीतहु—मनको जीतना, शत्रु को जीतना ।

सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥
सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥

दो०—बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचन्द्र कें राज॥

मयूखन्हि=किरणें।

कवितावली

बालरूप की झाँकी

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच विमोचनको, ठगि सी रही जे न ठगे धिक ते॥
तुलसी मन रंजन रंजित अंजन, नैन सुखंजन-जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै, नवनील सरोरुह से बिकसे॥१॥

पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि, मंजु बनी मनि माल हिये।
नवनील कलेवर पीत झँगा, झलकैं पुलकैं नृप गोद लिये॥
अरविंद सो आनन रूप मरंद अनंदित लोचन-भृंग पिये।
मन मों न वस्यो अस बालक जौ, तुलसी जगमें फल कौन जिये॥२॥

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं॥
दमकैं दतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल-बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी-मन-मन्दिर में बिहरैं॥३॥

बाललीला

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥

आरि=हठ।

कबहूँ रिसआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं ।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी-मन-मंदिर में बिहरैं ॥४॥
बर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर-पल्लव खोलन की ।
चपला चमकैं घन बीच जगै, छवि मोतिन माल अमोलन की ॥
घुँघरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुण्डल लोल कपोलन की ।
निवछावरि प्रान करै तुलसी, बलि जाउँ लला इन बोलन की ॥५॥

धनुर्यज्ञ तथा रामविवाह

गर्भ के अर्भक काटन को, पटु धार कुठार कराल है जाको ।
सोई हौं बूझत राज सभा, 'धनु को दल्यौ' ? हौं दलिहौं बल ताको॥
लघु आनन उत्तर देत बड़ो, लरिहै मरिहै करिहै कछु साको ।
गोरो गरूरगुमान भरो कहो कौसिक छोटो सो ढोटो है काको ॥६॥
दूलह श्रीरघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मंदिर माहीं ।
गावति गीत सबैं मिलि सुन्दरि, बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं ॥
राम को रूप निहारति जानकि, कंकन के नग की परछाहीं
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं ॥७॥

केवट का पाद-प्रक्षालन

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े ।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन होत, अजाखुर बारिधि बाढ़े ॥

अर्भक = शिशु । साको = कीर्ति ।

तुलसी जेहि के पद पंकज ते प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढे ॥८॥

एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू?
तुलसी अवलंब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू?
बरु मारिए मोहिं, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥९॥

रावरे दोष न पाँयन को, पगधूरिको भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है॥
पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है?
तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥१०॥

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछू वेद ना पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लागि, राजा जू!
हौं दीनबित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं?
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सो निषाद ह्वै कै बाद न बढ़ाइहौं।
तुलसी के ईस राम रावरे सो साँची कहौं,
बिना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं ॥११॥

स्वै = स्वतः के। बन-वाहन=नाव। सहरी = छोटी मछली।

वन-मार्ग में

पुर तें निकसीं रघुबीर वधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
झलकी भरि भाल कनी जल की, पटु सूखि गये मधुराधर वै ॥
फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै ।
तियकी लखि आतुरता पिय की अखियाँ अति चारु चलीं जलच्वै ॥ १२

"जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ, प्रिय! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े ।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े" ॥
तुलसी रघुबीर प्रियाश्रम जानिकै बैठि बिलम्ब लौं कंटक काढ़े ।
जानकीनाहको नेह लख्यौ, पुलकोतनु, बारि विलोचन बाढ़े ॥ १३ ॥

ठाढ़े हैं नव द्रुम डार गहे, धनु कांधे धरे कर सायक लै ।
बिकटी भृकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छवि है ॥
तुलसी असि मूरति आनि हिये जड़ डारिहौं प्रान निछावरिकै ।
स्रम-सीकर सांवरि देह लसै मनो रासि महा तम तारक मै ॥ १४ ॥

वनिता बनी स्यामलगौर के बीच विलोकहु, री सखि! मोहिं सी ह्वै ।
मग जोग न कोमल, क्यों चलिहैं? सकुचात मही पदपंकज छ्वै ॥
तुलसी सुनि ग्राम वधू विथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै ।
सब भांति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूपके बालक द्वै ॥ १५ ॥

साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है ।

पसेऊ=पसीना । विथकीं=मुग्ध हो गई । मैन=कामदेव ।

बान कमान निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनिवेष कियो है ॥
संग लिये विधु-वैनी वधू, रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
पायॅन तौ पनही न, पयादेहि क्योंचलिहैं?सकुचातहियोहै॥१६॥

रानी मैं जानी अजानी महा, पवि-पाहनहू ते कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्योतियको जिनकानकियोहै।
ऐसी मनोहर मूरत ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है?
आँखिन में,सखि!राखिबे जोग, इन्हेंकिमिकै बनवास दियो है१७

सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल,तिरीछीसीभौंहैं।
तून सरासन बान धरे, तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं ॥
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्राम वधू सिय सों कहौ साँवरे से, सखि रावरे को हैं?॥१८॥

सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसकाइ चली ॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन-लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै विगसीं मनो मंजुल कंज-कली॥१९॥

विन्ध्य के बासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे!
गौतम तीय तरी 'तुलसी' सो कथा सुनि भे मुनिवृंद सुखारे ॥
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे!
कीन्हीं भली रघुनायक जू करुना करि कानन कों पगु धारे॥२०॥

तून=तरकस। अवलोकति लोचन लाहु=वह दृश्य देख रही थीं जिससे उनका नेत्र पाना सार्थक हो रहा था।

लंका-दहन

लाइ लाइ आगि भागे बाल-जाल जहाँ-तहाँ,
लघु ह्वै निबुकि गिरि मेरु तें बिसाल भो।
कौतुकी कपीस कूदि कनक कँगूरा चढ़ि,
रावन भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो॥
तुलसी बिराज्यो व्योम बालधी पसारि भारी,
देखे हहरात भट काल तें कराल भो।
तेज को निधान मानो कोटिक कृसानु भानु,
नख बिकराल, मुख तैसो रिस-लाल भो ॥२१॥

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौ,
लंक लीलबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं व्योम-वीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीर रस बीर तरवारि सी उघारी है॥
तुलसी सुरेस-चाप कैधौ दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहै,
"कानन उजार्‌यौ अब नगर प्रजारी है" ॥२२॥

निबुक=झुक कर। बालधी=पूँछ। कृसानु-सरि=अग्नि की नदी। धूमकेतु=पुच्छल तारे।

गीतावली

बालकाण्डः—

(१)

सुख नींद कहति आलि आइहौं।
राम, लखन, रिपुदवन, भरत सिसु करि सब सुमुख सोआइहौं॥
रोवनि-धोवनि, अनखानि, अनरसनि, डिठि-मुठिनिठुर नसाइहौ।
हँसनि, खेलनि, किलकनि, आनंदनि भूपति-भवन बसाइहौं॥
गोद बिनोद मोद मय मूरति हरषि हरषि हलराइहौं।
तनु तिल तिल करि वारि राम पर लैहौं रोग बलाइहौं॥
रानी राउ सहित सुत परिजन निरखि नयन-फल पाइहौं।
चारु चरित रघुबंस-तिलक के तहँ तुलसी मिलि गाइहौं॥

अयोध्याकाण्डः—

(२)

जबहिं रघुपति-संग सीय चली।
बिकल-बियोग लोग पुरतिय कहैं अति अन्याउ, अली॥
कोउ कहै मनिगन तजत काँच लगि, करत न भूप भली।

अनखानि=खिन्नहोना; झुँझलाना। अनरसनि = मचलना। डिठि = नजर। मुठि = टोना।

कोउ कहै कुल-कुबेलि कैकेयी दुख-बिष-फलनि फली।
एक कहै बन जोग जानकी! विधि बड़ विषम बली॥
तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली॥

(३)

मोको बिधु बदन विलोकन दीजै।
राम लषन मेरी यहै भेंट, बलि, जाउ जहाँ मोहि मिलि लीजै॥
सुनि पितु-बचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हे।
अजहुँ अवनि-बिदरत दरार मिस सो अवसर-सुधि कीन्हे॥
पुनि सिर नाइ गवन कियो प्रभु, मुरछित भयो भूप न जाग्यो।
करम चोर नृप-पथिक मारि मानो राम-रतन लै भाग्यो॥
तुलसी रविकुल-रवि रथ चढ़ि चले तकि दिसि दखिन सुहाई।
लोग नलिन भए मलिन अवध-सर विरह-विषम-हिम पाई॥

(४)

नीके कै मैं न विलोकन पाए।
सखि! यहि मग जुगपथिक मनोहर, वधु बिधु-बदनि समेत सिधाये॥
नयन सरोज, किसोर बयस बर, सीस जटा रचि मुकुट बनाये।
कटि मुनि बसन तून, धनुसरकर, स्यामल गौर सुभाय सोहाए॥
सुंदर बदन, बिसाल बाहु उर, तनु-छबि कोटि मनोज लजाए।
चितवत मोहिं लगी चौंधी सी जानौं न कौन कहाँ तें धौं आए॥
मनु गयो संग, सोचबस लोचन मोचत बारि, कितौ समुझाए।
तुलसीदास लालसा दरस की सोइ पुरवै जेहिं आनि देखाए॥

दलकि=तड़क करके। दली=नष्ट हो गई। यहै=अन्तिम की।

(५)

बिनती भरत करत कर जोरे ।
दीनबन्धु दीनता दीन की कबहुँ परै जिनि भोरे ॥
तुम्हसे तुम्हहिं नाथ मोको, मोसे जन तुमको बहुतेरे ।
इहै जानि पहिचानि प्रीति छमिए अघ औगुन मेरे ॥
यों कहि सीय-राम-पाँयनि परि लखन लाइ उर लीन्हे ।
पुलक सरीर नीर भरि लोचन कहत प्रेम-पन कीन्हें ॥
तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौ ।
तौ प्रभु–चरन–सरोज–सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ ॥

लंकाकाण्डः—

(६)

मेरो सब पुरुषारथ थाको ।
बिपति बँटावन बन्धु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ?
सुनु सुग्रीव साँचेहू मोपर फेर्‌यो बदन बिधाता ।
ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लषन सो भ्राता ॥
गिरि कानन जैहैं शाखा–मृग हौं पुनि अनुज सँघाती ।
ह्वै है कहा बिभीषन की गति, रही सोच भरि छाती ॥
तुलसी सुनि प्रभु बचन भालु कपि सकल बिकल हिय हारे ।
जामवंत हनुमंत बोलि तब औसर जानि प्रचारे ॥

भोरे=भूल में । पन=प्रण । परिजनहि=सेवक को । शाखामृग=बंदर । प्रचारे=उत्तेजित किया ।

(७)

जो हौं तव अनुसासन पावौं ।
तौ चन्द्रमहिं निचोर चैल ज्यों आनि सुधा सिर नावौं ।
कै पाताल दलौं व्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं ॥
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं ।
विबुध-बैद बरबस आनौं धरि तौ प्रभु अनुग कहावौं ॥
तुम्हरिहि कृपा प्रताप तिहारेहि नेकु बिलंब न लावौं ।
दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं ॥

(८)

बैठी सगुन मनावति माता ।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरिबाता ॥
दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं ।
जब सिया सहित बिलोकि नयन भरि राम लखन उर लैहौं ॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी ।
गनक बुलाइ पाँय परि पूछति प्रेम-मगन मृदु बानी ॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट ते समाचार लै आयो ।
प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो ॥

—:०:—

चैल=वस्त्र । सिर नावौं=प्रणाम करूँ । व्यालावलि=अमृतकुण्ड की रक्षा करनेवाले सर्प । भेदि भुवन कर...... तावौं=ब्रह्माण्ड में छेद करके सूर्य को बाहर कर दूँ और शीघ्र ही राहु से उस छेद को ढाँक दूँ (जिससे फिर सूर्य न आ सके और सबेरा न हो)। विबुध बैद = अश्विनीकुमारद्वय । फुरि = सच्ची । गनक = ज्योतिषी ।

दोहावली

दोहा—राम वाम दिसि जानकी लपन दाहिनी ओर ।
ध्यान सकल कल्यान मय सुरतरु तुलसी तोर ॥१॥
राम नाम-मनि-दीप धरु जीह-देहरी-द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरौ जो चाहसि उजियार ॥२॥
हिय फाटहु, फूटहु, नयन, जरउसो तन केहिकाम ।
द्रवहिं, स्रवहिं, पुलकहिं नहीं तुलसी सुमिरत राम ॥३॥
कै तोहिं लागहिं राम प्रिय, कै तू प्रभु प्रिय होहि ।
दुइ महँ रुचै जो सुगम हो कीवे तुलसी तोहि ॥४॥
वारि मथे घृत होइ वरु सिकता तें वरु तेल ।
विनु हरिभजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल ॥५॥
मो सम दीन न दीन हित तुम समान रघुवीर ।
अस विचारि रघुवंसमनि, हरहु विपम भव भीर ॥६॥

सोरठा—विनुगुरु होइकि ज्ञान ज्ञान कि होइ बिराग बिनु ?
गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहिय हरिभगति बिनु ॥७॥

दोहा—भलो भलाई पै लहै, लहै निचाई नीचु ।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीचु ॥८॥

– कै तोहिं लागहिं रामप्रिय·········· होहि—या तो तू भक्त बन अथवा ज्ञानी हो । वरु=चाहे । अपेल=अकाट्य ।

आपु आपु कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ ।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोइ ॥९॥
तुलसी जे कीरति चहहिं पर की कीरति खोइ ।
तिनके मुँह मसि लागिहै, मिटिहि न मरिहैं धोइ॥१०॥
नीच गुडी ज्यों जानिवो, सुनि लखि तुलसीदास ।
ढीलि दिये गिरि परत महिं, खैंचत चढत अकास ॥११॥
तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिलै सहाय ।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय ॥१२॥
जो सुनि समुझि अनीति रत, जागत रहै जु सोइ ।
उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ ॥१३॥

सोरठा—फूलै फरै न बेत, जदपि सुधा बरषहिं जलद ।
मूरुख हृदय न चेत, जो गुरु मिलैं बिरंचि सम ॥१४॥

दोहा—प्रभुते प्रभु-गन दुखद लखि प्रजहिं सँभारै राउ ।
करतें होत कृपान को कठिन घोर घन घाउ ॥१५॥
बरसत हरषत लोग सब, करषत लखैं न कोइ ।
तुलसी प्रजा-सुभागते भूप भानु सो होइ ॥१६॥
सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकवि सराहहिं सोइ ॥१७॥
आपन छोडो साथ जब ता दिन हितू न कोइ ।
तुलसी अंबुज अंबु-बिन, तरनि तासु रिपु होइ ॥१८॥

गुडी=पतंग । भवितव्यता=होनहार । तरनि=सूर्य ।

तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर बोलि हैं, हमैं पूछिहैं कौन ॥१६॥
मनि मानिक महँगे किए, सहँगे तृन जल नाज।
तुलसी एतो जानिये राम गरीब-नेवाज ॥२०॥

सोरठाः—मुकुति जनममहिजानि, ज्ञान खानि, अघ हानिकर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइय कस न ?२१॥
जरत सकल सुरबृंद, विषम गरल जेहि पान किय।
तेहिन भजसि मति मंद, को कृपालु संकर सरिस ?२२॥

चातक-प्रेम

दोहा·—एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम-घन स्याम हित, चातक तुलसीदास ॥२३॥
जो घन बरषै समय सिर, जौ भरि जनम उदास।
तुलसी याचक चातकहि, तऊ तिहारी आस ॥२४॥
चातक तुलसी के मते, स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेम तृषा बाढति भली, घटे घटैगी आनि ॥२५॥
रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखि गे अंग।
तुलसी चातक-प्रेम को नित नूतन रुचि रंग ॥२६॥
चढ़त न चातक-चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोख।

दादुर = मेढक। जरत सकल सुरबृंद—समुद्रमंथन के समय जब विष ज्वाला से देवगण जलने लगे।

तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख ॥२७॥

उपल वरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ?२८॥

मान राखिबो, माँगिबो, पिय सों नित नवनेह ।
तुलसी तीनिउ तब फबैं, जौं चातक मत लेहु ॥२९॥

तुलसी चातक माँगनो एक, एक घन दानि ।
देत जो भू भाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि ॥३०॥

प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि ।
जाचक जगत कनाउड़ो, कियो कनौड़ो दानि ॥३१॥

नहिं जाचत, नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ ।
ऐसे मानी माँगनेहि, को बारिद बिन देइ ?३२॥

मुख-मीठे, मानस-मलिन कोकिल मोर चकोर ।
सुजस-धवल, चातक नवल ! रह्यो भुवन भरि तोर ॥३३॥

वध्यो वधिक परचो पुन्य जल उलटि उठाई चोंच ।
तुलसी चातक प्रेम पट मरतहुँ लगी न खोंच ॥३४॥

तुलसी चातक देत सिख सुतहि बार ही बार ।
तात न तर्पन कीजिये बिना बारिधर-धार ॥३५॥

उष्ण काल अरु देह खिन, मग पंथी, तन ऊख ।
चातक बतियाँ ना रुचीं अन जल सींचे रूख ॥३६॥

सोरठा:—जियत न नाई नारि चातक घन तजि दूसरहि ।
सुरसरि हू को बारि मरत न माँगेउ अरघ जल ॥३७॥

कनाउड़ो-कृतघ्न । अन जल = स्वाती जल से भिन्न जल ।

विनय-पत्रिका

(१)

गाइए गनपति जगवन्दन । संकर सुवन भवानी के नन्दन ॥
सिद्धि सदन गजबदन विनायक । कृपासिन्धु सुंदर सब लायक ॥
मोदक-प्रिय मुद-मंगल दाता । विद्या बारिधि बुद्धि-बिधाता ॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहिं राम सिय मानस मोरे ॥

(२)

बावरो रावरो नाह, भवानी !
दानि बड़ो नित देत दए बिनु, वेद-बड़ाई भानी ॥
निज घर की बर बात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी ॥
सिव की दई सम्पदा देखत श्री शारदा सिहानी ॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी ॥
तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयों नकबानी ॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी ॥
यह अधिकार सौंपिए औरहिं, भीख भली मैं जानी ॥
प्रेम-प्रसंसा-विनय-व्यंग-जुत सुनि विधि की बर बानी ॥
तुलसी मुदित महेश, मनहिं मन जगत मातु मुसुकानी ॥

श्री=लक्ष्मी । सिहानी=ललचाई । नाक=स्वर्ग । सँवारत=सजाते हुए । नकबानी=नाक में दम ।

(३)

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो ।
हरि-पद-बिमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुझि सबेरो ॥
बिछुरे ससि रवि मन नयननि ते पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत स्रमित निसि दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो ॥
छुटै न विपति भजे बिनु रघुपति स्रुति संदेह निबेरो ।
तुलसीदास सब आस छाँड़ि कर होहि राम कर चेरो ॥

(४)

अब लौं नसानी अब न नसैहौं ।
राम कृपा भव निसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं ॥
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर-करते न खसैहौं ।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहि कसैहौं ॥
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं ।
मन-मधुकर पन करि तुलसी रघुपति-पद कमल बसैहौं ॥

सबेरो=शीघ्र ही । बिछुरे ससि ... नयननि तें=चन्द्रमा भगवान् के मन से उत्पन्न हुआ है और सूर्य नेत्रों से। बहिबो=बहना (अशान्त रहना) स्रुति=वेद । निबेरो=दूर किया । जागे=वैराग्य उत्पन्न होने पर । न डसैहौं=बिछौना न बिछाऊँगा (विषयों में न पडूँगा) उर=करतें=हृदयरूपी कर से । न खसैहौं=गिरने नहीं दूँगा ।

(५)

जाके प्रिय न राम बैदेही ।

सो छाँड़िए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितन भए मुद मंगलकारी ॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम-पद एतो मतो हमारो ॥

(६)

मन पछितैहै अवसर बीते ।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम बचन अरु ही ते ॥
सहस्र-बाहु दस-बदन आदि नृप बचे न काल बली ते ।
हम हम करि धन धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ-रत न करु नेह सबहीतें ।
अंतहु तोहि तजैंगे पामर ! तू न तजै अबहीं ॥
अब नाथहिं अनुरागु जाग जड़ त्यागु दुरासा जी
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ विषय-भोग बहु घी ते ॥

गुरु=शुक्राचार्य । तज्यो=तीन पग पृथ्वी का दान देते समय । कंत=पति । ही ते=हृदय से ।

श्रीधर पाठक

श्रीधर पाठक की अपने समय के श्रेष्ठ कवियों में गणना थी। उन्होंने व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों ही में उच्चकोटि की कविता की है। यह प्रकृति के कवि थे और इन्होंने प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। देश-भक्ति और राष्ट्र-प्रेम की भावना भी इनकी कविता में खूब पाई जाती है। भाषा की मधुरता और कल्पना की सुकुमारता के लिए यह अपने युग के कवियों में अग्रिम थे। इनकी सरस और कोमल पदावली ने खड़ी बोली में व्रज-भाषा का माधुर्य उपस्थित किया है। यद्यपि इनमें बहुत से क्रिया पदों का प्रयोग विशुद्ध खड़ी बोली का नहीं है तो भी लोग उन्हें खड़ी बोली का आचार्य कहते हैं। उन्होंने अनेक प्रकार के छन्दों—लावनी, रोला, सवैया, बरवै आदि में कविता लिखी हैं। इनकी व्रज-भाषा की रचनाओं में परम्परा से चले आनेवाले चमत्कार-प्रदर्शन को छोड़कर स्वाभाविक उक्तियों की अधिकता है।

'भारत गीत' इनके राष्ट्रीय गीतों का संग्रह है। काश्मीर सुषमा प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से अनुपम है। ऊजड़-ग्राम, श्रान्त पथिक तथा एकान्तवासी योगी इनके काव्यानुवाद हैं। आपने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति का आसन सुशोभित किया था।

काश्मीर-सुषमा

प्रकृति यहां एकांत बैठि निज रूप सँवारति।
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति॥
विमल-अंबु-सर मुकुरन महँ मुख-बिम्ब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आपही तन मन वारति॥
सजति, सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी।
बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी॥
विहरति विविध-विलास-भरी यौवन के मद सनि।
ललकति किलकति पुलकति निरखति थिरकति बनिठनि॥
मधुर मंजु छवि पुंज छटा छिरकति बन कुंजन।
चितवति रिझवति हँसति डसति मुसिक्याति हरति मन॥
यहाँ सुरूप सिंगार रूप धरि धरि बहु भातिन।
सर, सरिता, गिरि, सिखर, गगन, गह्वर, तरुवर तृन॥
पूरन करिबे काम कामना अपने मन की।
किंकरता करि रह्यौ प्रकृति-पंकज-चरनन की॥
चहुँ दिसि हिमगिरि-सिखर, हीर-मनि मौलि-अवलि मनु।
स्रवत सरित-सित-धार द्रवत सोइ चंद्रहार जनु॥

चित्तरसारी=चित्रशाला। गह्वर=गुफा। किंकरता=सेवा।

फल फूलन छबि छटा छई जो बन उपबन की।
उदित भई मनु अवनि-उदर सों निधि रतनन की॥
तुहिन सिखर, सरिता सर, विपिनन की मिलि सो छवि।
छयी मंडलाकार, रही चारिहुँ दिसि यों फवि॥
मानहुँ मनिमय मौलि-माल- आकृति अलबेली।
बाँधी बिधि अनमोल गोल भारत-सिर सेली॥
अर्द्धचंद्र सम सिखर-स्रैनि कहुँ यों छबि छायी।
मानहुँ चन्दन-खौरि, गौरि-गुरु, खौरि लगायी॥
पुनि तिन स्रैनिन बीच बितस्ता रेखु जु राजति।
वैष्णव "श्री" अरु सिव त्रिसूल की आभा भ्राजति॥
हिम स्रैनिन सों घिरयौ अद्रि-मंडल यह रूरौ।
सोहत द्रोनाकार सृष्टि-सुषमा-सुख पूरौ॥
बहु बिधि दृश्य अदृश्य कला कौशल सों छायौ।
रञ्जन विधि नैसर्ग मनहुँ बिधि दुर्ग बनायौ॥
अथवा विमल बटोरि विश्व की निखिल निकाई।
गुप्त राखिबे काज सुदृढ़ सन्दूक बनाई॥
कै यह जादू भरी बिस्व बाजीगर थैली।
खेलत में खुलि परी सैल के सिर पै फैली॥
खिली प्रकृति-पटरानी के महलन फुलवारी।
खुली धरी कै भरी तासु सिंगार-पिटारी॥

सेली=एक माला जो योगी यती सिर में पहनते हैं। गौरि-गुरु=हिमालय। वितस्ता=एक नदी। द्रोणाकार=द्रोणाचल। रूरौ=सुन्दर। वैष्णव श्री=रामानन्दी तिलक।

शरद्-वर्णन

काँसन सों धरनी को शरीर, निसा नव निर्मल चंद्रकलान सों।
हंसन सों नदियान को नीर, तड़ाग कमोदन के कुनबान सों।
कानन के तट फूलन भार झुके छद सप्तन के बिरवान सों।
सेत भये सब या ऋतु के गुन, बाग चमेलिन की कलियान सों ॥१॥

चाँदी के पत्रन के सम ऊजरे, सह्व मृनाल से सुन्दर धौरे।
वायु के वेग फिरैं बदरा, छितराने अनन्त उतै उत दौरे॥
अम्बु घटे तें भए हलुके, तितरैं बितरैं न रहैं इक ठौरे।
राजत राज समान अकास, मनों तिहि मस्तक चौर हैं ढौरे॥२॥

वतकैं निज आनन गाडि तरंगन, की अवलीन डुलावति हैं।
कल हंसऽरु सारस की सुठि पंगति तीर पै भीर मचावति हैं॥
रज छाइ सरोजन की अरुनाई, सों ताकी निकाई बढ़ावति हैं।
पुनि सब्द मरालन केसों तरगिनि प्रीति हिये उपजावति हैं॥३॥

काली घटा का घमंड घटा नभ मण्डल तारका वृन्द खिले।
उजियाली निशा छविशाली दिशा अति सोहै धरातल फूलेफले॥
निखरे सुथरे वनपन्थ खुले तरुपल्लव चन्द्र कला से धुले।
वन शारदी चन्द्रिका चादर ओढ़े लसैं समलंकृत कैसे भले॥४॥

छद सप्तन (सप्तच्छद)=सप्तपर्णी, छतिवन।

भारत देश

जय जय प्यारा भारत देश

जय जय प्यारा जग से न्यारा, शोभित सारा देश हमारा।
जगत मुकुट जगदीश दुलारा, जय सौभाग्य सुदेश ॥ १ ॥
जय जय प्यारा भारत देश।

स्वर्गिक शीस फूल पृथ्वी का, प्रेम मूल प्रिय लोक त्रयीका।
सुललित प्रकृति नटी का टीका, ज्यों निशि का राकेश ॥ २ ॥
जय जय प्यारा भारत देश।

जय जय शुभ्र हिमाचल शृङ्गा, कलरव निरत कलोलिन गंगा।
भानु प्रताप चमत्कृत अंगा, तेज पुञ्ज तप वेश ॥ ३ ॥
जय जय प्यारा भारत देश।

जग में कोटि कोटि जुग जीवै, जीवन सुलभ अमिय रस पीवै।
सुखद वितान सुकृत का सीवै, रहे स्वतंत्र हमेश ॥ ४ ॥
जय जय प्यारा भारत देश।

घन-विनय

हे घन ! किन देशन महँ छाये, वर्षा बीति गई।
फिरहु कहाँ भरमाये, क्या यह रीति नई ॥
सावन परम सुहावन, पावन सोभा जोय।
सो बिन तुम्हरे आवन, रह्यो भयावन होय ॥

गयौ सलूनो सूनो, तुम बिन निपट उपास ।
दुख बाढ़ै दिन दूनो, चहुँ दिसि परि रह्यो त्रास ॥
सरवर सरित सुखानी, रजमय मलिन अकास ।
ऊबि अवनि अकुलानी, खग मृग मरि रहे प्यास ॥
कहँ सब साज सजाये, करि रहे कहँ घन घोर ।
दल बादल कहँ छाये, जिहि लखि नाचत मोर ॥
विकट भयङ्कर ग्रीसम, ऊसम तपत प्रचंड ।
दहि रह्यो दस दिसि भीसम, उत्कट अतिव उदंड ॥

———

सलूनो=रक्षाबन्धन का तेवहार ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों ही के श्रेष्ठ कवियों में हैं। हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ आचार्यों मे आपकी गणना है। कवि और आचार्य का ऐसा सुन्दर योग अन्यत्र कम मिलता है। आपकी रचनाओं ने आचार्य द्विवेदी द्वारा निर्मित खड़ी बोली को काव्य की रसव्यंजना और अर्थ-गंभीरता प्रदान की है।

'प्रिय-प्रवास' इनका प्रसिद्ध महाकाव्य है जिसका विषय श्रीकृष्ण की मथुरा यात्रा है। यह करुण-रस प्रधान है। इसमें इन्होंने संस्कृत वृत्तों को हिन्दी में बड़े-लालित्यके साथ ढालाहै। छन्द की विविधता, भावना की मार्मिकता और कल्पनाकी मिठासके लिये यह काव्य बेजोड़ है। इसमें वियोग का ऐसा द्रावक और व्यापक वर्णन हुआ है कि देखते ही बनताहै। इसकी भाषा अत्यन्त सौष्ठवपूर्ण और मधुर। संस्कृत काव्य की समास-प्रधान शैली कविने अपनाई है। कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार है। उसका शब्द-भण्डार विपुल है। हिन्दीके सबसे अधिक लोकप्रिय आधुनिक महाकाव्यों मे 'प्रिय-प्रवास' की गणनाहै।

'वैदेही-वनवास' और 'रस-कलस' हरिऔधजी के अन्य दो प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। व्रजभाषा में लिखित 'रस-कलस' में रसोंका परिचय और उनकी व्याख्या की गई है। भाषा में मुहावरा का चमत्कारपूर्ण प्रयोग उनकी स्फुट कविताओं की विशेषता है। ये कवितायें 'चोखे चौपदे' 'चुभतेचौपदे' आदि ग्रन्थों में संगृहीत हैं। गद्य के भी आप यशस्वी लेखक थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति का आसन आपने दो बार सुशोभित किया था।

ब्रज की संध्या

दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला॥
तरु-शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा॥१॥

विपिन बीच विहंगम-वृन्द का।
कल निनाद विवर्द्धित था हुआ॥
ध्वनिमयी विविधा विहगावली।
उड़ रही नभ-मण्डल मध्य थी॥२॥

अधिक और हुई नभ-लालिमा।
दश-दिशा अनुरंजित हो गई॥
सकल-पादप-पुञ्ज हरीतिमा।
अरुणिमा विनिमज्जित सी हुई॥३॥

झलकने पुलिनों पर भी लगी।
गगन के तल की यह लालिमा॥
सरि सरोवर के जल मे पड़ी।
अरुणता अति ही रमणीय थी॥४॥

अचल के शिखरो पर जा चढ़ी।
किरण पादप-शीश-विहारिणी॥
तरणि-बिम्ब तिरोहित हो चला।
गगन-मण्डल मध्य शनैः—शनैः॥५॥

पुलिनों=किनारों। तरणि=सूर्य।

ध्वनि-मयी करके गिरि-कन्दरा।
कलित-कानन केलि निकुञ्ज को ॥
बज उठी मुरली इस काल ही।
तरणिजा-तट राजित कुंज मे ॥६॥

क्वणित मंजु–विषाण हुए कई।
रणित शृंग हुए बहु साथ ही॥
फिर समाहित–प्रान्तर–भाग में।
सुन पड़ा स्वर धावित-धेनु का ॥७॥

निमिष में वन–व्यापित--वीथिका।
विविध–धेनु–विभूषित हो गई॥
धवल–धूसर–वत्स–समूह भी।
विलसता जिनके दल साथ था ॥८॥

जब हुए समवेत शनैः शनैः।
सकल गोप सधेनु समण्डली॥
तब चले ब्रज–भूषण को लिये।
अति अलंकृत–गोकुल–ग्राम को ॥९॥

गगन-मण्डल मे रज छा गई।
दश–दिशा बहु–शब्दमयी हुई॥
विशद–गोकुल के प्रति–गेह में।
वह चला वर–स्रोत विनोद का ॥१०॥

विषाण=नरसिंगा नामक बाजा। शृंग=सींग से बना एक बाजा। समवेत=इकट्ठा, एकत्र।

यशोदा-विलाप

कंस के निमन्त्रण पर नन्द कृष्ण और बलराम को लेकर मथुरा गए। चलते समय यशोदा ने कहा था कि उनको अपने साथ ही लौटा लाना। नन्द को अकेला लौटा देखकर यशोदा अपने पुत्र कृष्ण के लिए अत्यन्त विकल हो विलाप करती हैं।

प्रिय–पति वह मेरा प्राण–प्यारा कहाँ है।
दुख–जलधि–निमग्ना का सहारा कहाँ है।
अब तक जिसको मै देख के जी सकी हूँ।
वह हृदय हमारा नेत्र–तारा कहाँ है॥ १॥

पल पल जिसके मैं पंथ को देखती थी।
निशि दिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती।
उर पर जिसके है सोहती मंजुमाला।
वह नव नलिनी से नेत्र वाला कहाँ है॥ २॥

मुझ विजित–जरा का एक आधार जो है।
वह परम अनूठा रत्न सर्वस्व मेरा।
धन मुझ निधनी का लोचनों का उजाला।
सजल जलद का सी कान्तिवाला कहाँ है॥ ३॥

प्रति दिन जिसको मैं अंक में नाथ लेके।
विधि लिखित कुअंकों की क्रिया कीलती थी।
अति प्रिय जिसको है वस्त्र पीला निराला।
वह किशलय के से अंगवाला कहाँ है॥ ४॥

विजित जरा = बुढ़ापे से जीती गई। कीलती = नष्ट करती।

वर--वदन विलोके फुल्ल अंभोज ऐसा।
करतल-गत होता व्योम का चंद्रमा था।
मृदु--रव जिसका है रक्त सूखी नसों का।
वह मधुमयकारी मानसों का कहाँ है॥ ५ ॥

रसमय वचनों से नाथ जो गेह मध्य।
प्रति दिवस बहाता स्वर्ग--मंदाकिनी था।
मम सुकृति धरा का स्रोत जो था सुधा का।
वह नव-घन न्यारी श्यामता का कहाँ है॥ ६ ॥

स्वकुल जलज का है जो समुत्फुल्लकारी।
मम परम--निराशा--यामिनी का विनाशी।
ब्रज--जन विहगों के वृन्द कामोद--दाता।
वह दिनकर शोभी राम-भ्राता कहाँ है॥ ७ ॥

मुख पर जिसके है सौम्यता खेलती-सी।
अनुपम जिसका हूँ शील सौजन्य पाती।
परदुख लख के है जो समुद्विग्न होता।
वह कृति सरसी का स्वच्छ सोता कहाँ है॥ ८ ॥

निविड़ तम निराशा का भरा गेह में था।
वह किस विधुमुख की कान्ति को देखभागा।
सुखकर जिससे है कामिनी जन्म मेरा।
वह रुचिकर चित्रों का चितेरा कहाँ है॥ ९ ॥

राम=बलराम।

सह कर कितने ही कष्ट औ संकटों को।
बहु यजन कराके पूज के निर्जरों को।
यक सुअन मिला है जो मुझे यत्न द्वारा।
प्रियतम ! वह मेरा कृष्ण प्यारा कहाँ है ॥१०॥

मुखरित करता जो सद्म को था शुकों-सा।
कलरव करता था जो खगों-सा बनों में।
सुध्वनित पिक-सा जो वाटिका को बनाता।
वह बहुविध कण्ठों का विधाता कहाँ है ॥११॥

सुन स्वर जिसका थे मत्त होते मृगादि।
तरु--गण--हरियाली थी महा दिव्य होती।
पुलकित बन जाती थी लसी पुष्प—क्यारी।
उस कल मुरली का नादकारी कहाँ है ॥१२॥

जिस प्रियवर का खो ग्राम सूना हुआ है।
सदन सदन में हा ! छा गई है उदासी।
तम वलित मही में है न होता उँजाला।
वह निपट निराली कान्तिवाला कहाँ है ॥१३॥

वन-वन फिरती हैं खिन्न गायें अनेकों।
शुक भर भर आँखे गेह को देखता है।
सुधि कर जिसकी है शारिका नित्य रोती।
वह शुचि रुचि स्वाती मंजु मोती कहाँ है ॥१४॥

शारिका=मैना।यजन=यज्ञ।निर्जरा=देवताओं (जिनकोवृद्धापानहींआता)

गृह-गृह अकुलाती गोप की पत्नियाँ हैं।
पथ-पथ फिरते हैं ग्वाल भी उन्मना हो।
जिस कुँवर बिना मैं हो रही हूँ अधीरा।
वह छबि खनि शोभी स्वच्छ हीरा कहाँ है ॥१५॥

मम उर कँपता था कंस--आतंक ही से।
पल-पल डरती थी क्या न जाने करेगा।
पर परम--पिता ने की बड़ी ही कृपा है।
वह निज कृत पापों से पिसा आप ही जो ॥१६॥

अतुलित बलवाले मल्ल कूटादि जो थे।
वह गज गिरि ऐसा लोक--आतंक--कारी।
अनुदिन उपजाते भीति थोड़ी नहीं थे।
पर यमपुर--वासी आज वे हो चुके हैं ॥१७॥

भयप्रद जितनी थीं आपदायें अनेकों।
यक यक करके वे हो गईं दूर यों ही।
प्रियतम ! अनसोची ध्यान में भी न आई।
यह अभिनव कैसी आपदा आ पड़ी है ॥१८॥

मृदु किशलय ऐसा पंकजों के दलों सा।
वह नवल सलोने गात का तात मेरा।
इन सब पवि ऐसे देह के दानवों का।
कब कर सकता था नाश कल्पान्त मे भी ॥१९॥

अनुदिन=आये दिन। पवि=वज्र

पर हृदय हमारा ही; हमें है बताता।
सब शुभ-फल पाती हूँ किसी पुण्य ही का।
वह परम अनूठा पुण्य ही पापनाशी।
इस कुसमय में है क्यों नहीं काम आता ॥२०॥

प्रिय-सुअन हमारा क्यों नहीं गेह आया।
वर नगर छटायें देख के क्या लुभाया ?
वह कुटिल जनों के जाल मे जा पड़ा है।
प्रियतम! उसको या राज्य का भोग भाया॥२१॥

मधुर वचन से औ भक्ति भावादिकों से।
अनुनय विनयों से प्यार की उक्तियों से।
सब मधुपुर-वासी बुद्धिशाली जनों ने।
अतिशय अपनाया क्या ब्रजाभूषणों को ?॥२२॥

बहु विभव वहाँ का देख के श्याम भूला।
वह बिलम गया या वृन्द में बालकों के।
फँस कर जिसमें हा! लाल छूटा न मेरा।
सुफलक-सुत ने क्या जाल कोई बिछाया ॥२३॥

परम शिथिल हो के पंथ की क्लान्तियों से।
वह ठहर गया है क्या किसी वाटिका मे।
प्रियतम! तुमसे या दूसरों से जुदा हो।
वह भटक रहा है क्या कहीं मार्ग ही में ॥२४॥

सुफलक-सुत=अक्रूर।

विपुल कलित कुंजें भानुजा-कूल-वाली ।
अतुलित जिनमें थी प्रीति मेरे प्रियों की ।
पुलकित चित से वे क्या उन्हीं में गये हैं ।
कतिपय दिवसों की श्रान्ति उन्मोचने को ॥२५॥

विविध सुरभिवाली मण्डली बालकों की ।
मम युगल सुतों ने क्या कहीं देख पाई ।
निज सुहृद जनों में वत्स में धेनुओं में ।
बहु विलम गये वे क्या इसी से न आये ? ॥२६॥

निकट अति अनूठे नीप फूले फले के ।
कलकल बहती जो धार है भानुजा की ।
अति-प्रिय सुत को है दृश्य न्यारा वहाँ का ।
वह समुद उसे ही देखने क्या गया है ? ॥२७ ॥

सित सरसिज ऐसे गात के श्याम-भ्राता ।
यदुकुल जन हैं औ वंश के हैं उजाले ।
यदि वह कुलवानों के कुटुम्बी बने तो ।
सुत सदन अकेले ही चला क्यों न आया ॥२८॥

यदि वह अति स्नेही शील सौजन्य शाली ।
तज कर निज भ्राता को नहीं गेह आया ।
ब्रज अवनि बता दो नाथ तो क्यों बसेगी ।
यदि वदन विलोकूँगी न मैं क्यों बचूँगी ॥२९॥

सुरभि=गाय । नीप=कदम्ब ।

प्रियतम ! अब मेरा कण्ठ में प्राण आया।
सच सच बतला दो प्राण-प्यारा कहाँ है ?
यदि मिल न सकेगा जीवनाधार मेरा।
तब फिर निज पापी प्राण मैं क्यों रखूँगी ॥३०॥

(प्रिय-प्रवास से)

काँटा और फूल

है न काँटों-सा उभरना काम का।
क्या रहा, जब दूसरों को दुख दिया ॥
सीख लेवें क्यों न खिलना फूल-सा।
जब किया तब और को पुलकित किया ॥ १ ॥
रंग जिन पर हो भलाई का चढ़ा।
सब जगह उनकी घटी सब दिन रही ॥
डालियों में है न काँटों की कमी।
पर दिखाते फूल हैं दो चार ही ॥ २ ॥
जब उठीं आँखें हमें काँटे मिले।
नोक अपनी वैसे ही सीधी किये ॥
पर नहीं जाना निराले फूल ये,
कब खिले और किस समय कुम्हला गये ॥ ३ ॥
क्या बतावें है कलेजा मल रहा।
कुछ न काँटों का हुआ इनके किए ॥

धूप निकली, लू चली, आँधी उठी।
हा इन्हीं सुकुमार फूलों के लिए ॥ ४ ॥
दूर आँखों से न वह काँटा हुआ।
नोक से जिसकी लहू कितना बहा ॥
पर बिचारी तितलियों के वास्ते।
दो दिनों भी फूल का न समाँ रहा ॥ ५ ॥
किस लिए काँटे बहुत दिन तक रहें।
आह ! मेरा जी बहुत खिजला गया ॥
किस लिए इतना अनूठा फूल यह।
आज फूला और कल कुम्हला गया ॥ ६ ॥

समाँ=छटा।

मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के सबसे अधिक लोकप्रिय कवियों में से हैं। उनको राष्ट्र-कवि भी कहा जाता है। खड़ी बोली के आधुनिक रूप के निर्माताओं में उनकी गणना होती है। उपदेश-वृत्ति और गौरव की भावना को जगाने की शक्ति के साथ-साथ उनकी कविता में काव्य-कला का उत्कृष्ट रूप मिलता है। राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार का बड़ा श्रेय उनकी सरल, सजीव, सरस और नीतिपूर्ण कविताओं को है। भावों की स्पष्टता और भाषा के मधुर प्रवाह के लिये आप प्रसिद्ध हैं। मार्मिक सूझ और कल्पना-कौशल से ओत-प्रोत आपकी रचनाओं में आनन्द के साथ जीवन के लिये उपयोगी शिक्षा भी मिलती है। भारतीय संस्कृति का सच्चा स्वरूप आपने प्रदर्शित किया है। खण्ड-काव्य, महाकाव्य और गीत-काव्य सभी की रचना में आप सिद्धहस्त हैं। इन्होंने नाटक और अतुकान्त कविताएँ भी लिखी हैं। आपने अनेक काव्य ग्रन्थ लिखे तथा बँगला ग्रन्थों का कविता में अनुवाद किया है। भारत-भारती, जयद्रथवध, पञ्चवटी द्वापर, साकेत, यशोधरा, किसान, अनघ आदि आपके प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ हैं।

आगरा विश्वविद्यालय ने आपको 'डाक्टर' की सम्मानित उपाधि से विभूषित किया है।

ध्वज-वंदना

हमारा राष्ट्रध्वज हमारी संस्कृति की विशेषताओं और राष्ट्रीय आदर्शों का प्रतीक है। इसी दृष्टिकोण से इस वंदना में कवि ने ध्वज के तीन रंगों और चक्र का प्रयोजन स्पष्ट किया है।

यह पुण्य पताका फहरे,
मुक्त वायुमंडल में अपनी मानस लहरी लहरे।
जय-मैत्री-करुणा-धारामय यह ध्वजचक्र हमारा,
कभीक्रान्ति का सूर्य यही है कभीशान्ति-शशि-तारा।
हमें विजय का सूत्र मिला है इसी चक्र के द्वारा,
रक्षक यही सुदर्शन अपना, किरण-कुसुम-सा प्यारा,
कालचक्र यह हाथ हमारे, लक्ष्य क्यों न थक थहरे।

कर्मक्षेत्र हरा है अपना ज्ञान शुभ्र मन माना,
बलिबलवती विनीत भक्ति का कल केसरिया बाना।
इस त्रियोग के तीर्थराज में हमे स्वधर्म निभाना,
अपनी स्वतंत्रता से सबका मुक्ति-मंत्र है पाना।
सब समान भागी जीवन के, यही घोषणा घहरे।

त्याग हमारा धर्म, किन्तु हम हरण कभी न सहेंगे,
दानवत्व से मानवता का वरण कभी न सहेंगे,
किसी आततायी का तुष्टीकरण कभी न सहेंगे,
और कहीं भी व्यर्थ किसी का मरण कभी न सहेंगे।
वह नरता ही क्या बर्बरता जिसके आगे ठहरे।

इस ध्वज पर जूझे स्वजनों पर ध्यान जहाँ जाता है,
मस्तक ऊँचा होने पर भी मन भर भर आता है,
निर्भय मृत्यु वरण कर ही नर अमर कीर्ति पाता है,
ऐसे पुत्रों की ही आशा रखती भू माता है।
भूमाता का यह अंचल पट छाया करके छहरे।

माँ कह एक कहानी

बच्चे सोने के पहले अपनी नानी से कहानी सुनना चाहते हैं। गौतम बुद्ध का पुत्र राहुल अपनी माँ यशोधरा से कहानी कहने का आग्रह करता है। यशोधरा कल्पित कहानी न कहकर अपने पति के जीवन की एक सच्ची घटना सुनाती है। राहुल बीच-बीच में पंक्ति को दोहरा कर हुँकारी भरता है।

"माँ, कह एक कहानी।"
"बेटा, समझ लिया क्या तूने
मुझको अपनी नानी ?"
"कहती है मुझसे यह चेटी
तू मेरी नानी की बेटी
कह माँ, कह लेटी ही लेटी
राजा था या रानी ?

चेटी=दासी।

"तू है हठी मान-धन मेरे,
सुन उपवन में बड़े सवेरे,
तात भ्रमण करते थे तेरे
जहाँ सुरभि मनमानी।"
"जहाँ सुरभि मनमानी
हाँ, माँ, यही कहानी।"
"वर्ण वर्ण के फूल खिले थे
झल मल कर हिम बिन्दु झिले थे
हलके झोंके हिले-मिले थे
लहराता था पानी।"
"लहराता था पानी
हाँ, हाँ, यही कहानी।"
"गाते थे खग कल कल स्वर से,
सहसा एक हंस ऊपर से,
गिरा विद्ध होकर खर-शर से
हुई पक्ष की हानी।"
"हुई पक्ष की हानी
करुणा भरी कहानी।"
"चौंक उन्होंने उसे उठाया
नया जन्म सा उसने पाया
इतने में आखेटक आया
लक्ष्य सिद्धि का मानी।"

"लक्ष्यसिद्धि का मानी
कोमल कठिन कहानी।"
"माँगा उसने आहत पक्षी
तेरे तात किन्तु थे रक्षी।
तब उसने जो था खग-भक्षी-
हठ करने की ठानी।"
"हठ करने की ठानी
अब बढ़ चली कहानी।"
"हुआ विवाद सदय निर्दय में,
उभय आग्रही थे स्वविषय में।
गई बात तब न्यायालय में
सुनी सभी ने जानी।"
"सुनी सभी ने जानी?
व्यापक हुई कहानी।"
"राहुल तू निर्णय कर इसका-
न्याय पक्ष लेता है किसका?
कह दे निर्भय जय हो जिसका
सुन लूँ तेरी वाणी।"
"माँ मेरी क्या वाणी
मैं सुन रहा कहानी।"
"कोई निरपराध को मारे,
तो क्यों अन्य उसे न उबारे?

रक्षक पर भक्षक को वारे
न्याय दया का दानी!"
"न्याय दया का दानी?
तूने गुनी कहानी।"

(यशोधरा से)

पंचवटी में लक्ष्मण

[१]

चारु चन्द्र की चंचल किरणें
खेल रही हैं जल-थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है,
अवनि और अंबर-तल में।
पुलक प्रकट करती है धरती
हरित तृणों की नोकों से,
मानों झीम रहे हैं तरु भी
मन्द पवन के झोंकों से॥

[२]

पंचवटी की छाया में है
सुन्दर पर्ण-कुटीर बना,

झीमना=नींद से हिलना।

उसके सम्मुख स्वच्छ शिखा पर
धीर, वीर निर्भीक-मना,
जाग रहा यह कौन धनुर्धर,
जब कि भुवन-भर सोता है?
भोगी कुसुमायुध योगी सा
बना दृष्टि-गत होता है॥

[३]

किस व्रत में है व्रती वीर यह
निद्रा का यों त्याग किये?
राज-भोग के योग्य विपिन में
बैठा आज विराग लिए?
बना हुआ है प्रहरी जिसका
उस कुटीर में क्या धन है,
जिसकी रक्षा में रत इसका
तन है, मन है, जीवन है?

[४]

मर्त्यलोक-मालिन्य मेटने
स्वामि-संग जो आई है,
तीन लोक की लक्ष्मी ने यह
कुटी आज अपनाई है।

कुसुमायुध=कामदेव

वीर वंश की लाज वही है,
फिर क्यों वीर न हो प्रहरी ?
विजन देश है, निशा शेष है,
निशाचरी माया ठहरी !

[५]

कोई पास न रहने पर भी
जन-मन मौन नहीं रहता,
आप आपकी सुनता है वह,
आप आपसे है कहता।
बीच-बीच मे इधर-उधर निज,
दृष्टि डालकर मोदमयी,
मन ही मन बातें करता है
वीर धनुर्धर नयी-नयी।

[६]

क्या ही स्वच्छ चाँदनी है यह,
है क्या ही निस्तब्ध निशा,
है स्वच्छन्द सुमंद गंध वह,
निरानन्द है कौन दिशा ?
नन्द नहीं, अब भी चलते है,
नियति-नटी के कार्य-कलाप,

गंधवह=वायु। नियति-नटी=भवितव्यता।

पर कितने एकांत भाव से,
कितने शांत और चुपचाप !

[७]

है बिखेर देती वसुन्धरा
मोती सबके सोने पर,
रवि बटोर लेता है उनको
सदा सवेरा होने पर,
और विरामदायिनी अपनी
संध्या को दे जाता है,
शून्य श्याम तनु जिससे उसका,
नया रूप झलकाता है ॥

[८]

तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके
पर है मानो कल की बात ।
वन को आते देख हमें जब
आर्त-अचेत हुए थे तात ।
अब वह समय निकट ही है, जब
अवधि पूर्ण होगी वन की,
किंतु प्राप्ति होगी इस जन को,
इससे बढ़कर किस धन की ?

[९]

और आर्य को ! राज्यभार तो
वे प्रजार्थ ही धारेंगे,
व्यस्त रहेंगे, हम सबको भी
मानों विवश विसारेंगे।
कर विचार लोकोपकार का
हमें न इससे होगा शोक,
पर अपना हित आप नहीं क्या
कर सकता है यह नर-लोक ?

[१०]

मँझली माँ ने क्या समझा था ?
कि मैं राजमाता हूँगी:
निर्वासित कर आर्य राम को
अपनी जड़ें जमा लूँगी।
चित्रकूट में किन्तु उसे ही
देख स्वयं करुणा थकती,
उसे देखते थे सब वह थी
निज को ही न देख सकती॥

[११]

अहो राज-मातृत्व यही था !
हुए भरत भी सब-त्यागी,

पर सौ-सौ सम्राटो से भी
हैं सचमुच वे बड़भागी।
एक राज्य का मूढ जगत ने
कितना महा-मूल्य रक्खा,
हमको तो मानो वन मे ही
है विश्वानुकूल्य रक्खा॥

[१२]

होता यदि राजत्व मात्र ही
लक्ष्य हमारे जीवन का,
तो क्यों अपने पूर्वज उसको
छोड़ मार्ग लेते वन का?
परिवर्तन ही यदि उन्नति है,
तो हम बढ़ते जाते हैं,
किन्तु मुझे तो सीधे सच्चे
पूर्व भाव ही भाते हैं॥

[१३]

जो हो जहाँ आर्य रहते हैं
वहीं राज्य वे करते हैं।
उनके शासन में वनचारी
सब स्वच्छन्द बिहरते हैं।

विश्वानुकूल्य = संसार की अनुकूलता।

रखते हैं सयत्न हम पुर में
जिन्हें पींजरों में कर बन्द,
वे पशु-पक्षी भाभी से हैं
हिले-मिले स्वयमपि सानन्द ॥

[१४]

करते हैं हम पतित जनों में
बहुधा पशुता का आरोप,
करता है पशुवर्ग किन्तु क्या
निज निसर्ग नियमों का लोप ?
मैं मनुष्यता को सुरत्व की
जननी भी कह सकता हूँ,
किन्तु पतित को पशु कहना भी
कभी नहीं सह सकता हूँ ॥

[१५]

आ-आकर विचित्र पशु-पक्षी,
यहाँ बिताते दोपहरी
भाभी भोजन देतीं उनको,
पंचवटी छाया गहरी
चारु चपल बालक ज्यों मिलकर
माँ को घेर खिझाते हैं,

निसर्ग=प्रकृति ।

घेर-खिझा कर भी आर्या को
वे सब यहाँ रिझाते हैं ॥

[१६]

गोदावरी नदी का तट वह
ताल दे रहा है अब भी,
चंचल जल कल-कल कर मानो,
तान ले रहा है अब भी !
नाच रहे हैं अब भी पत्ते,
मन-से सुमन महकते हैं,
चंद्र और नक्षत्र ललक कर,
लालच-भरे लहकते हैं ॥

[१७]

वैतालिक विहंग भाभी के
संप्रति ध्यानलग्न-से हैं,
नये गान की रचना में वे
कवि-कुल-तुल्य मगन-से हैं।
बीच-बीच में नर्तक केकी
मानो यह कह देता है—
मै तो प्रस्तुत हूँ, देखें, कल
कौन बड़ाई लेता है ?

वैतालिक=चारण; भाट । केकी=मोर ।

[१८]

मुनियों का सत्संग यहाँ है,
जिन्हें हुआ है तत्त्व-ज्ञान;
सुनने को मिलते हैं उनसे
नित्य नये अनुपम आख्यान।
जितने कष्ट कंटकों में हैं
जिनका जीवन-सुमन खिला,
गौरव-गंध उन्हें उतना ही
यत्र-तत्र-सर्वत्र मिला॥

[१९]

शुभ सिद्धान्त-वाक्य पढ़ते हैं
शुक-सारी भी आश्रम के,
मुनि-कन्याएँ यश गाती हैं
क्या ही पुण्य-पराक्रम के।
अहा! आर्य के विपिन-राज्य में
सुखपूर्वक सब जीते हैं,
सिंह और मृग एक घाट पर
आकर पानी पीते हैं॥

[२०]

गुह-निषाद-शवरों तक का मन
रखते हैं प्रभु कानन में;

सारी=मैना।

क्या ही सरल वचन रहते हैं
इनके भोले आनन मे !
इन्हें समाज नीच कहता है,
पर हैं ये भी तो प्राणी,
इनमें भी मन और भाव हैं,
किंतु नहीं वैसी वाणी ॥

[२१]

कभी विपिन मे हमें व्यंजन का
पड़ता नहीं प्रयोजन है।
निर्मल जल, मधु, कंद, मूल, फल
आयोजनमय भोजन है।
मनःप्रसाद चाहिये केवल,
क्या कुटीर फिर क्या प्रासाद ?
भाभी का आह्लाद अतुल है,
मँझली माँ का विपुल विषाद ॥

[२२]

अपने पौधों में जब भाभी
भर-भर पानी देती हैं,
खुरपी लेकर आप निराती
जब वे अपनी खेती हैं,
पाती हैं तब कितना गौरव,

मन प्रसाद=मन की प्रसन्नता ।

कितना सुख, कितना संतोष
स्वावलम्ब की एक झलक पर
न्यौछावर कुबेर का कोष ॥

[२३]

सांसारिकता में मिलती है
यहाँ निराली निःस्पृहता,
अत्रि और अनुसूया की-सी
होगी कहाँ पुण्य-गृहता ?
मानो है यह भुवन भिन्न ही,
कृत्रिमता का काम नहीं;
प्रकृति अधिष्ठात्री है इसकी,
कहीं विकृति का नाम नहीं।

[२४]

स्वजनों की चिंता है हमको,
होगा उन्हें हमारा सोच,
यही एक इस विपिन-वास में
दोनों ओर रहा संकोच।
सब सह सकता है, परोक्ष ही
कभी नहीं सह सकता प्रेम,
बस, प्रत्यक्ष-भाव में उसका
रक्षित-सा रहता है क्षेम ॥

(पञ्चवटी से)

विकृति=नकलीपन।

माखनलाल चतुर्वेदी

(एक भारतीय आत्मा)

चतुर्वेदीजी हिन्दी के प्रमुख कवियों में हैं। हिन्दी कविता को इन्होंने नई शैली तथा नई सामाजिक दृष्टि प्रदान की है। द्विवेदी-युग की कविता की उपदेश-वृत्ति से आप सर्वथा मुक्त हैं। त्याग, तप, आत्मबलिदान और राष्ट्र-पूजा की व्यंजना इनकी कविता मे प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। पराधीनता के प्रति उग्र विद्रोह की भावना कवि ने जगाई है। इनका स्वदेशप्रेम अपनी तन्मयता में सन्त कवियों के आत्मसमर्पण के निकट पहुँचता है।

इन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों के अतिरिक्त उर्दू, फारसी और बोलचाल के शब्दों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। इसीसे इनकी भाषा में मिठास के साथ-साथ शक्ति का भी समावेश है। कवि के अतिरिक्त आप अच्छे गद्य लेखक, नाटककार, सम्पादक और वक्ता भी हैं।

'हिमकिरीटिनी' और 'हिमतरङ्गिनी' आपके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं जिनमें से प्रथम पर आपको देव-पुरस्कार मिल चुका है। अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापतित्व को भी आप सुशोभित कर चुके हैं।

भारतीय विद्यार्थी

विद्यार्थी राष्ट्र की आधार-शिला है। बुद्धि, बल और विक्रम के प्राचीन भारतीय आदर्शों की रक्षा करते हुए राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों का नेतृत्व करने के लिए कवि उनसे तैयार होने को कहता है।

समय जगाता है हम सबको, झटपट जग जाना ही होगा,
देख विश्व-सिद्धान्त कार्य में निर्भय लग जाना ही होगा।
दृढ़ करके मस्तिष्क मनस्वी, बनकर वीर कहाना होगा,
पूर्ण ज्ञान-सर्वेश-चरण पर जीवन-पुष्प चढ़ाना होगा।
यह स्वार्थी संसार एक दिन बने हमीं से जब परमार्थी,
तब हम कहीं कहा सकते हैं, सच्चे भारतीय विद्यार्थी ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्य-व्रत भीष्म पितामह को आगे रख धार रहे हों,
वीर तेज में अर्जुन बन कर, दुर्जन-दल को मार रहे हों,
सादेपन में हो सुतीक्ष्ण, पागल-से प्रण को पाल रहे हों,
न्याय-नीति में विदुर-सरीखे तीखे वाक्य निकाल रहे हों।
कर्म-क्षेत्र हमको मिल जावे, हों बस इसी बात के प्रार्थी,
ऋषियों की सन्तान वही हैं, अद्भुत भारतीय विद्यार्थी ॥ २ ॥

पूर्ण ज्ञान-सर्वेश-चरण=पूर्ण-ज्ञानरूपी ईश्वर के चरण।

सीख रहे हों पश्चिम से जो धर्म-स्थल में मरने के गुण,
नैतिक छान-बीन की दृढ़ता मर्मस्थल में धरने के गुण।
हृदय, हाथ, मस्तिष्क मिला कर, कर्मस्थल जय करने के गुण,
अपनी कार्यशक्ति से दुनिया भर के मन वश करने के गुण।
वे ही हैं माता के रक्षक, वे ही हैं सच्चे शिक्षार्थी,
वे ही हैं लक्ष्यों के लक्षक, प्यारे भारतीय विद्यार्थी ॥ ३ ॥
घर-घर में जगदीशचन्द्र वसु होना काम हमारा ही है,
बन कर कृषक गर्व से कृषि को बोना काम हमारा ही है।
शिल्प बढ़ा कर ताजमहल फिर रच करके दिखलाने होंगे,
व्यापारी बन देश-देश में अपने पोत घुमाने होंगे।
रेल, तार आकाशयान ये हम क्या कभी बना न सकेंगे?
शुद्ध स्वदेशी पीताम्बर क्या माधव को पहिना न सकेंगे? ॥४॥
पहले बालभरत हो सिंहों के भी दाँत दबाना होगा,
पुनः भरत हो, बन्धु-प्रेम पर अपनी भेंट चढ़ाना होगा।
तभी भरत हो देह-मान तज, विश्व-रूप बन जाना होगा।
फिर भारत के पुत्र भरत कहला कर गौरव पाना होगा।
जब तक नहीं भरत-कुल-दूषण भूषण हो, होंगे प्रेमार्थी,
तब तक कैसे कहा सकेंगे--'विजयी भारतीय विद्यार्थी' ॥ ५ ॥
जीवन-रण में वीर! पधारो, मार्ग तुम्हारा मंगलमय हो,
गिरि पर चढ़ना गिर कर बढ़ना, तुमसे सब विघ्नों को भय हो।

धर्म-स्थल=कर्तव्य-क्षेत्र। पोत=जहाज। बालभरत=दुष्यन्त का पुत्र। भरत हो देहमान तज=जड़भरत के समान विदेह होकर।

नेम निभाओ, प्रेम बढ़ाओ, शीश चढ़ा भारत उद्धारो,
देवों से भी कहला लो यह विजयी भारतवर्ष पधारो।
भारत के सौभाग्य-विधाता, भारत-माता के आज्ञार्थी,
भारत-विजय-क्षेत्र में जाओ, प्यारे भारतीय विद्यार्थी ॥ ६ ॥

पुष्प की अभिलाषा

फूल अनेक अवसरों की शोभा बढ़ाता है। इस पुष्प की अभिलाषा अनोखी है। यह मातृ-भूमि पर आत्मबलि चढ़ाने वाले वीरों के पैरों के नीचे रौंदा जाना चाहता है।

चाह नहीं मैं सुरबाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ;
चाह नहीं, प्रेमी माला में
बिंध प्यारी को ललचाऊँ;
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर
हे हरि डाला जाऊँ;
चाह नहीं देवों के शिर पर
चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली!
उस पथ में तुम देना फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।

मुकुटधर पाण्डेय

मुकुटधर पाण्डेय आधुनिक हिन्दी कविता में गीतशैली का आरम्भ करने वाले कवियों में से हैं। द्विवेदीयुग में होकर भी अपनी मौलिक प्रतिभा के कारण वे एक स्वच्छन्द काव्य-धारा बहाते रहे। इधर वर्षों से कवि ने साहित्यिक सन्यास सा ले लिया है, किन्तु आज भी उनकी पूर्व कृतियों के कारण उनका नाम मध्यप्रदेश के गण्यमान्य कवियों में है।

आरम्भ से ही इनके काव्य पर प्राकृतिक सौन्दर्य की छाप अङ्कित दिखाई देती है। इनका प्रकृति-निरीक्षण व्यापक तथा गम्भीरता है। हरे-भरे खेतों, मैदानों, सरिताकूलों, वन-वीथियों आदि का सजीव स्वाभाविक चित्रण इनकी कविता में है। पाण्डेय जी की रचनाओं में करुणा की आर्द्रता और सौन्दर्य की भावना पग-पग पर मिलती है। अन्य आधुनिक कवियों में प्राय. पाया जाने वाला विचारों का सघर्ष इनकी कविता में नहीं है।

किंशुक-कुसुम

कवि अपनी मानसिक व्यवस्था से अत्यन्त पीडित है। वसंत-ऋतु में फूलने वाले टेसू के फूल से अपने पूर्व परिचय के आधार पर वह आत्मीयता जताता है। वह भगवान् के पास अपनी करुण दशा का सन्देश उसके द्वारा भेजना चाहता है!

(१)

किंशुक-कुसुम देख शाखा पर फूला तुझे,
मेरा मन आज यह फूला न समाता है;
पूरे एक वर्ष पीछे आया फिर देखने में,
इतने दिवस भला कहाँ तू बिताता है?
कौन कौन देश घूम आया इस बीच में तू,
हाल क्यों वहाँ का नहीं मुझको सुनाता है?
भूल तो गया न मुझे जाके उस अञ्चल में,
क्या न उपहार कुछ मेरे लिए लाता है?

(२)

है क्या तुझे याद कभी ठीक इसी ठौर पर,
तेरे साथ खेलने में प्रात मैं बिताता था;

अञ्चल=प्रान्त।

एक ओर उषा का अरुण-हास, एक ओर
आनन अरुण तव देख सुख पाता था।
ठीक इसी भाँति यह आम खूब बौर कर,
अपनी अपार छटा हमको दिखाता था;
तुझको झुलाता कभी धीरे से, कभी तो रम्य
स्वागत में तेरे मैं मधुर गीत गाता था।

(३)

कभी किसी तरु ही को मान वन-देव मैं तो,
श्रद्धायुत तेरी कुसुमाञ्जलि चढाता था;
कभी तुझे महानदी-नीर में बिखेर कर,
तेरी दिव्य आभा देख मोद उर लाता था।
शिशुओं के हेतु कभी किंशुक-कुसुम ? तुझे,
पत्र से मैं तोड़ तोड साथ लिये जाता था;
लाल पखड़ी के वाल-विहग वना के अहा !
वाल उर उनका न हर्ष से समाता था।

(४)

छाया वन वीच आज सरस वसंत वही,
मैं भी वही, और वही भूमि भी पवित्र है;
वदला न तू भी पर देखने मे आता नहीं
आज किस हेतु यह सुखद चरित्र है !
झूल झूल जाता मम मानस-नयन बीच,
विविध विनोदमय वह मोद चित्र है;

बात कल की थी, और आज कुछ और ही है,
विधि का विधान मित्र ! ऐसा ही विचित्र है ।

(५)

कहता तुझे था कभी किंशुक-कुसुम देख
जैसा तव रूप, वैसा तुझमें न वास है;
सरसिज सुमन सुसौरभ से सौरभित,
करता समीर यह तेरा उपहास है,
किन्तु है मलीन मम जीवन-कुसुम आज,
वह न सुगन्धमय ससर विकास है;
देख देख मेरी दशा आती है दया क्या तुझे ?
किंवा तेरे मुख पर यह व्यंग्य हास है ?

(६)

किंशुक-कुसुम ! जब विगत वसन्त होगा,
मौन होगी कोकिल, प्रखर ग्रीष्म आवेगा;
सूखेंगे कुटज-कचनार के सुमन-हार,
तरुण तरणि लोनी लतिका जलावेगा ।
होके वृन्तच्युत तब तू भी यह भूमि छोड़,
मुझसे बिदा हो दूर देश चला जावेगा;
होगी भगवान से जो भेट कहीं, याद कर
करुण-कथा तू मेरी उनको सुनावेगा ?

कुटज=कुरैया; एक सुन्दर फूलोंवाला जंगली पेड जिसके बीजा को इन्द्रजव कहते हैं । तरणि=सूर्य । वृन्तच्युत=डाली से गिरा हुआ ।

(७)

अपनी दशा पर विचार करता हूँ जब,
सत्य कहता हूँ, नयनों में अश्रु आते हैं;
दूर करने को दुख, यत्न हैं किये अनेक,
किन्तु एक भी तो कुछ काम नहीं आते हैं;
एक अब आश भगवान रामचन्द्र जी की,
आर्तत्राण कह जिन्हें वेद बुध गाते हैं;
करुणा करेंगे वह करुणानिधान कब,
किंशुक-कुसुम ! मेरे प्राण अकुलाते हैं।

कुररी के प्रति

कुररी एक पक्षी विशेष का नाम है जिसका स्वर बड़ा दयनीय होता है। रात्रि को आकाश में पिछड़ गई कुररी के करुण स्वर को सुनकर कवि उसके भटक जाने के कारणों की कल्पना करता है।

(१)

बता मुझे ऐ विहग विदेशी ! अपने जी की बात।
पिछड़ा था तू कहाँ, आ रहा जो कर इतनी रात ?
निद्रा में जा पड़े कभी के, ग्राम्य मनुज स्वच्छन्द।
अन्य विहग भी निज खोतों में सोते हैं सानन्द ॥

इस नीरव-छुटिका में उड़ता है तू चिन्तित गात।
पिछुड़ा था तू कहाँ हुई क्यों तुझको इतनी रात॥

(२)

देख किसी माया-प्रान्तर का चित्रित चारु दुकूल,
क्या तेरा मन मोह-जाल मे गया कहीं था भूल?
क्या उसकी सौन्दर्य-सुरा से उठा हृदय तव ऊब?
या आशा की मरीचिका से छला गया तू खूब?
या होकर दिग्भ्रान्त लिया था तूने पथ प्रतिकूल?
किसी प्रलोभन मे पड़ अथवा गया कहीं था भूल?

(३)

अन्तरिक्ष मे करता है तू क्यों अनवरत विलाप?
ऐसी दारुण व्यथा तुझे क्या, है किसका परिताप?
किसी गुप्त दुष्कृति की स्मृति क्या उठी हृदय मे जाग?
जला रही है तुझको अथवा प्रिय-वियोग की आग?
शून्य गगन मे कौन सुनेगा तेरा विपुल विलाप?
बता कौन सी व्यथा तुझे है, है किसका परिताप?

(४)

यह ज्योत्स्ना रजनी हर सकती क्या तेरा न विषाद?
या तुझको निज जन्मभूमि की सता रही है याद?
विमल व्योम में टँगे मनोहर मणियों के ये दीप;
इन्द्रजाल तू उन्हें समझकर जाता है न समीप?

मरीचिका=मृगतृष्णा।

यह कैसा भयमय विभ्रम है कैसा यह उन्माद ?
नहीं ठहरता तू, आई क्या तुझे गेह की याद ?

(५)

कितनी दूर ? कहाँ ? किस दिशि में तेरा नित्य निवास ?
विहग विदेशी आने का क्यों किया यहाँ आयास ?
वहाँ कौन तारागण करता है आलोक-प्रदान ?
गाती है तटिनी उस भू की बना कौन सा गान ?
कैसी स्निग्ध समीर चल रही ? कैसी वहाँ सुवास ?
किया यहाँ आने का तूने कैसे यह आयास ?

———

आयास=कष्ट ।

बलदेवप्रसाद मिश्र

बलदेवप्रसाद मिश्र हिन्दी के विद्वान् कवि हैं। दर्शन इनका प्रिय विषय होने के कारण इनकी अधिकांश कविताओं में उसकी झलक पाई जाती है। कवित्व और दर्शन का मेल इनकी रचनाओं में बड़ा स्वाभाविक बन पड़ा है। इनकी कुछ कवितायें इतनी गम्भीर और ऊँची हैं कि उनका रसास्वादन विद्वान् पाठक ही कर सकते हैं।

हिन्दी साहित्य में जो भिन्न-भिन्न धारायें हैं इन्होंने प्रायः सभी के अन्तर्गत रचनायें की हैं। ब्रज-भाषा में इन्होंने बड़े भावपूर्ण और सरस छन्द लिखे हैं। इनकी भाषा, वर्णनशैली और रस-सृष्टि सभी उत्तम है। स्थिति के अनुरूप भाषा लिखना इनकी विशेषता है। जहाँ उत्साह और स्फूर्ति का भाव आप जगाते हैं वहाँ आपकी भाषा का ओज देखते ही बनता है। अन्यत्र माधुर्यगुण की छटा है। सरल से सरल भाषा में गम्भीर से गम्भीर भाव भरने में ये कुशल हैं। इनकी रचनायें नव-युवकों के लिए बड़ी प्रेरणाप्रद हैं।

कौशल-किशोर, जीवन-सङ्गीत, साकेत-सन्त आपके प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ हैं। जीवन-सङ्गीत दार्शनिक विचारों से ओत-प्रोत है।

नवयुवक

इस कविता में नवयुवक की क्षमताओं का दिग्दर्शन कराया गया है। नवयुवक राष्ट्र की आशा कहे जाते हैं। उन्हीं में निहित शक्ति का यह आह्वान है।

ऐ नौजवान ! सुन अमर गान, पहिचान आप अपने को तू।
ऐ महामहिम, सागर महान, बुद्-बुद न जान अपने को तू ॥
जी रहे आज हैं अमर वृन्द, तेरे ही तरल इशारों पर,
इतना विशाल आकाश थमा, तेरे ही जय के नारों पर।
आशाओं के सब तार बंधे, तेरी आँखों के तारों पर,
तू कहीं आग में कूद पड़े, खिल जायँ फूल अंगारों पर ॥
क्यों चकित-चित्त हो भूल रहा, ऐ बल निधान अपने को तू ?
ऐ नौ जवान ! सुन अमर गान, पहिचान आप अपने को तू !
तू चाहे तो ऊसर में भी गंगा का सागर लहराये,
तू चाहे तो सागर अथाह, पल में ऊसर-सा बन जाये,
तू चाहे रज-कण पर्वत हो, भूकम्प पर्वतों पर आये,
तू चाहे तो विदलित भू पर, अमरों का स्वर्ग उतर आये ॥
तू विभु का ही प्रतिरूप अरे, छोटा न मान अपने को तू ?
ऐ नौजवान ! सुन अमर गान पहिचान आप अपने को तू ॥
तुझ में अतीत के सुफल सभी, तुझ में भविष्य के बीज धरे,
तेरी सत्ता से रहते हैं, उत्साह-कुञ्ज सब हरे-भरे।

तू अखिल शक्ति का धाम युवक, तेरी समता कह कौन करे ॥
तू कौन काम कर सका नहीं, तू कहाँ नहीं क्या नहीं अरे ?
बस, एक बार दिखला दे तो, हे विश्व-प्राण अपने को तू !
ऐ नौजवान ! सुन अमर गान, पहिचान आप अपने को तू ।
यह काँप उठे संसार कहीं, अँगुली यदि एक उठा दे तू ।
गिर जायँ गगन के तारे भी आँखे यदि लाल दिखा दे तू ।
पर्वत भी चूर-चूर होवे, अपना यदि ध्यान जमा दे तू ।
क्यों निष्क्रिय होकर खोना है, जीवन अनमोल बता दे तू ।
वेदान्त तुझे कह रहा ब्रह्म, कह जग-वितान अपने को तू ।
ऐ नौजवान ! सुन अमर गान, पहिचान आप अपने को तू ।
उठ सँभल, समझ अपनी ताकत, है कौन असम्भव बात तुझे ।
तू सोता है, यह जगा रहा, जीवन रण का आघात तुझे ॥
दृग खोल और आ आगे बढ़ दे सका कौन है मात तुझे ।
आश्चर्य अरे ओ महावीर, अपना ही बल अज्ञात तुझे ॥
उठ एक बार, मत भूल, दिव्य मंगल-निधान अपने को तू !
ऐ नौजवान ! सुन अमर गान, पहिचान आप अपने को तू ॥

सीताजी का जन्म

श्रवण कीजिये, विज्ञ राम ! सीता का संभव
है जो भावी एक महामख का शुचि उद्भव ।

जग-वितान=जगत्-विस्तार । महामख=महायज्ञ ।

होगा जिसके लिये विकट राक्षस-रण भारी
जिसमें होगी भस्म तामसी गरिमा सारी ॥ १ ॥

दक्षिण में विस्तीर्ण एक है नगरी लङ्का
उपजाती जो नित्य सुरों के मन में शङ्का।
अमर-विमर्दक क्रूर तथा त्रिभुवन-विद्रावण
रहता है सकुटुम्ब वहाँ अमराधिप रावण ॥२॥

आर्य न आये यहाँ बहाते शोणित-धारा
भारत ने ही भरत भूप को समझा प्यारा।
इस रावण ने किन्तु अहह! वे चक्र चलाये।
जिससे आज अनार्य समझते हमें पराये ॥३॥

है वह लंकानाथ, किन्तु भारत में आकर
बढ़ा रहा है अहो! यूथ के यूथ निशाचर
विप्लव-सा कर रहे क्रूर वे अत्याचारी
उन्हें दमन कर सके न दक्षिण के अधिकारी ॥४॥

उनने अत्याचार-पराकाष्ठा दिखला दी
उच्छृंखलता-पूर्ण सभी दिशि उनने छा दी।
मुनियों का संहार, धर्म-मंदिर तुड़वाना,
इन्द्रिय-सौख्य-प्रचार, यही है उनका बाना ॥५॥

एक बार कुछ दूत तपोवन में भिजवाकर
मुनियों से अन्याय-युक्त उनने माँगा कर।

त्रिभुवन-विद्रावण=तीनों लोकों को भयभीत करनेवाला।

ऋषियों ने दारिद्रय दिखाया जब निज भारी
'दे दो तन का रक्त' लगे कहने निशिचारी॥६॥

देख असुर-हठ क्षुब्ध हुए वे सकल मुनीश्वर
दिया दुखित हो रुधिर सुजाँघें चीर-चीर कर।
तथा कहा 'यह रक्त सुता वह प्रगटावेगा
जिससे राक्षस वंश नष्ट ही हो जावेगा' ॥७॥

दुखियों की वह आह शाप होकर निकली जब
गये कलेजे दहल असुर लोगों के भी तब।
और न कोई ढंग वहाँ उनसे बन पाया
घड़ा तथा संदेश तुरत लङ्का पहुँचाया ॥८॥

ब्राह्मतेज-भयभीत असुरपति ने यह सुनकर
दूतों से कह दिया 'हटा दो यह घट सत्वर।'
पा ऐसा आदेश दूर मिथिला में जाकर
लौट गये वे एक खेत मे उसे गड़ाकर ॥ ९ ॥

सहसा मुनिगण-रक्त धरित्री ने जब पाया
रंग और ही अखिल जनकपुर मे तब छाया
वृष्टि रुकी, तृण-अन्न, लता, द्रुम सारे सूखे
आतपवश हो बने सरस द्रव्यादक रूखे॥१०॥

हुए कूप जलहीन, पङ्कमय सकल सरोवर,
मृगतृष्णा-अवशिष्ट हुई सरितायें घटकर।

द्रव्यादक = द्रव पदार्थ भक्षण करनेवाले वृक्षादि।

धरती लगी प्रतप्त धूलि-धारा सी झरने,
लगा पवन अतिचंड अग्नि-वर्षा सी करने ॥११॥

दावानल-वश विपिन शीघ्र ही हो जाता था
प्यास-त्रास से धैर्य सभी का खो जाता था।
जीव-जन्तु सब व्यथित जीव ले लेकर भागे
मनुजों ने भी भव्य भवन अपने सब त्यागे ॥१२॥

बढ़ा कराल अकाल लगे मरने नर-नारी
त्राहि-त्राहि का नाद उठा सब दिशि से भारी।
दृश्य देख ये परम कारुणिक प्रजा-प्रियकर
लगे सोचने जनकभूप अतिचिन्तित होकर ॥१३॥

अमर सदा संतोषयुक्त आहुति पाते थे
ऋषि-मुनि भी स्वच्छन्द साम सस्वर गाते थे।
अनय न किंचिन्मात्र यहाँ आश्रय पाता था
सब हृदयों में श्रौतधर्म निज छवि छाता था ॥१४॥

निज-निज रुचि अनुसार मार्ग अपने चुन-चुनकर
धर्म-कर्म में सभी हुए थे नित्य अग्रसर।
साम्य और वैभिन्य समंजस सौख्य-सना था
सब ही विधि आदर्शरूप यह राज्य बना था ॥१५॥

फिर यह दैवी कोप हुआ है क्योंकर इस भू पर।
जिससे है हो रही दुर्दशा यों इस भू पर।

अनय = अनीति। श्रौत = वैदिक।

त्राहि-त्राहि कर रही प्रजा प्राणों से प्यारी
पानी बिना समग्र सृष्टि है दुःखित भारी ॥१६॥

कैसे सङ्कट कटे प्रजा कैसे सुख पावे
कैसे यह दुर्दैव शीघ्र सारा हट जावे।'
यह विचार अविलम्ब निकट गुरुवर के जाकर
पूछा उनने और सुने ये वचन मनोहर ॥१७॥

"जोतोगे यदि धरा स्वयम् नृप! तुम हल लेकर
तो अलभ्य सद्वस्तु लहोगे अतिशय सुन्दर।
होगी वर्षा पूर्ण अवर्षण हट जावेगा।
जीव-लोक सब देश, शस्य श्यामल पावेगा।" ॥१८॥

यह सुन होकर मुदित भूप खेतों पर जाकर
लगे जोतने स्वयम् हेम का हल बनवा कर
शीघ्र अवर्षण मिटा और वितरित-नव-हर्षा
आई सत्वर रुचिर कान्ति धरकर मृदु वर्षा ॥१९॥

भरे सरोवर सकल, विकलता दूर भगी सब
स्थावर-जङ्गम प्रकृति भूप की सौख्य पगी सब
देख हाल यह पूर्ण मलिनता मन की खोकर
लगे जोतने भूप अधिक उत्साहित होकर ॥२०॥

पहुँचे भूपति वहाँ जहाँ था गड़ा हुआ घट
पाकर हल-आघात ठनाठन शब्द हुआ झट।
भू ने किया प्रदान स्वपति को वह घट प्यारा
जिसमे कन्या एक मनोहर थी छवि-सारा ॥२१॥

सहसा चारों ओर दिव्य प्रभा सी छायी
नूतन ही छवि प्रकृति-पदार्थों में भर आयी।
मृदुल अलक्षित कंठ लगे मङ्गल-मा गाने
वन में ही बहु भाँति मचे उत्सव मनमाने ॥२२॥

शीघ्र भूपवर उसे प्रेम-पूर्वक घर लाये
रखकर सीता नाम विविध संस्कार कराये।
वही सुगुण-सम्पन्न माधुरी मूर्त्ति निराली
है कर रही मनोज्ञ जनक-गृह को श्रीशाली ॥२३॥

द्वारकाप्रसाद मिश्र

द्वारकाप्रसाद मिश्र 'कृष्णायन' महाकाव्य के रचयिता हैं। अधिकांश में कृष्ण-चरित्र से सम्बन्ध रखनेवाली कवितायें ब्रजभाषा में लिखी गई हैं; किन्तु मिश्रजी ने कृष्ण-काव्य में अवधी भाषा और दोहा, चौपाई, सोरठा का प्रयोग करके नई परम्परा चलाई है। कवि ने विभिन्न स्थानों से संकलित घटनाओं को बड़े कौशल से प्रबंध-काव्य के रूप में गूँथा है।

आपने राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर इस महाकाव्य की रचना की है; किन्तु इसमें भारतीय संस्कृति का मूल्यवान् सार भी सुरक्षित रक्खा है। साथ ही प्रकृति के विभिन्न रूपों और विश्व के व्यापारों का मार्मिक वर्णन कवि ने किया है। जनता को आत्मविश्वास, बल और युग के अनुरूप आचरण करने की प्रेरणा देने की शक्ति इस महाकाव्य में है। विद्वानों की सम्मति में 'कृष्णायन' मानस के समान समर्थ और जातीय-सांस्कृतिक जीवन का एक प्रति-निधि महाकाव्य है।

मिश्रजी हमारे प्रान्त के साहित्यिक और राजनैतिक निर्माताओं में से हैं। आप उच्च कोटि के गद्य-लेखक और वक्ता भी हैं। मिश्रजी की विद्वत्ता और साहित्य-सेवा पर सागर विश्व-विद्यालय ने उन्हें 'डाक्टर' की सम्मानपूर्ण उपाधि दी है।

कृष्णायन की प्रस्तावना

सोरठा—जन्मेउ बंदी-धाम, जो जग जननी मुक्ति हित,
बंदहुँ सोइ घनश्याम, मैं बंदी बंदिनि-तनय।
जेहि संसृति विस्तार, कीन्हेउ क्रीड़ा हेत निज,
बंदहुँ रस-आगार, कलाकार सोइ प्रथम हरि।
रच्छे श्रुति इतिहास, कलि-वारिधि बूड़त निरखि,
बंदहुँ वेदव्यास, ज्ञान मूर्ति कृष्णहि स्वयम्।
बंदहुँ तुलसीदास, सत-रवि भासित-ज्ञान-घन,
सतत अनंत निवास, नत बरसत महि काव्य जल।
युग युग हरिपद चूमि, भुक्ति, मुक्ति, जप जेहि लही,
बंदहुँ भारत भूमि, हरि-जननी, हरि-यश-मयी।

दोहा—सुरसरि-हृत-पद-पद्म-रज, पुण्य भूमि निर्माण,
सचित चरणोदक उदधि, लहरत करि यश गान। १

चौपाई:—मनुजहु तेहि रज वारि प्रजाता,
दृढव्रत रहत सहज हरि-नाता।
तजि भव भोग धरत हरि-ध्याना,
पावत परब्रह्म भगवाना।

बंदी= ग्रन्थ लिखने के समय कवि जेल में था। बंदिनि = ग्रन्थ लिखने के समय भारत माता परतंत्र थी। संसृति = संसार। अनंत = आकाश और ईश्वर। सुरसरि-हृत-पद-पद्म रज = गंगा द्वारा लाई हुई विष्णु के चरणों की धूल।

सौंपि प्रभुहिं कर्मज फल सारे,
पाप-पुण्य गत होत सुखारे
ताते भोग-भूमि महि—सारी,
कर्म-भूमि इक जननि हमारी।
संचित पुण्य न जब लगि होई,
पावत जन्म न यहि महि कोई।
भोगत देव जदपि सुख नाना,
स्वर्ग न मिलत मोक्ष निर्वाणा।
क्षीण पुण्य सुख विभव विनाशा,
बाँधत तिनहि बहुरि भव-पाशा।
ताते जब तब हरिहिं रिझायी,
जन्मत सुर भारत महि आयी।

दोहा:—जानि आत्मजा लखि चरण, अर्पित तन, मन, प्राण,
होत सगुण निर्गुण हरिहु, लखति भूमि भगवान। २

चौपाई:—जन्म हेतु कबहुँक जन-त्राणा,
कबहुँ युगोचित ज्ञान-प्रदाना।
जो कछु धर्म-कर्म यहि देशा,
सो सब आपु दीन्ह विश्वेशा।
जबहिं म्लेच्छ भारत चढ़ि आवहिं,
संस्कृति, धर्म, सुनीति नसावहिं।

भव पाशा=जन्म मरण का जाल।

हरिहिं पुकारति भारत माता,
तब तब जन्म लेत जन-त्राता।
ये अंशन अवतार कहावत,
कछुक ईशना प्रभु दरसावत।
भयेउ पूर्ण एकहि अवतारा,
जब हरि कृष्ण रूप व्रज धारा।
प्रकटे भुवन विमोहन वेषा,
विश्वहिं दीन्ह अभय सदेशा।
खल-शिक्षण जन-रक्षण कीन्हा,
धरणिहिं धर्मराज प्रभु दीन्हा।

दोहाः—भयेउ कला षोडश सहित, कृष्णचन्द्र अवतार।
पूर्णब्रह्म हरियश विमल, बरनहुँ मति अनुसार। ३

चौपाईः—ज्ञान-ध्यान नहिं कछु मम पासा,
भक्ति न अचल, न बल विश्वासा।
मूल भाव, कछु कवितहु नाहीं,
चलन चहहुँ गहि कवि परिछाहीं।
तुलसी-शैलिहि मोहिं प्रिय लागी,
भाषहु बिनु विवाद रस-पागी।
सूरदास-पद-ज्योति सहारे,
बरने बाल-चरित मैं सारे।

पूर्ण एकहि अवतारा=षोडस कला पूर्ण अवतार। अन्य अवतार अंशावतार हैं।

जदपि ध्येय निज कबहुँ न त्यागा,
मधुप-स्वभाव मोहिं प्रिय लागा।
छमहिं अकिंचन जानि सुजाना,
रंचहु उर न काव्य-अभिमाना।
एक यहहि अभिलाषा मोरी,
सुनहिं कृष्ण-यश लाख-करोरी
मोहिं भरोस पढ़ि-गुनि आद्यंता,
छमिहैं सकल दोष मम संता।

दोहाः—दण्डनीय अपराध यदि, वंदनीय हरि नाम।
रुचत जिनहिं नहिं हरिचरित, मोहिं न तिनसन काम ४

चौपाईः—जिनहिं न धर्म, न संस्कृत ज्ञाना,
जिनहिं गरल सम शास्त्र पुराणा।
जीवन तरुहिं समूल विनाशी,
जे नव बीज वपन अभिलाषी।
उदधि-पार के नित नव वादा,
धरत शीश जे मानि प्रसादा।
पर-वश तन सँग मनहू आपन,
कीन्हेउ जिन पर-चरण समर्पण।
नात पुरातन जिन सब तोरा,
तिन हित यह प्रयास नहिं मोरा।

अपराध—अनधिकार चेष्टा।

परंपरा-प्रिय मनि मैं पायी,
पैतृक सम्पति तजि नहिं जायी।
करि तप ऋषिन लहेउ जो ज्ञाना,
भयेउ न आजहु सो निष्प्राणा।
बीज रूप सब निज उर धारी,
मोगति कर्म भूमि नव वारी।

दोहा—बाजी जो ब्रज बाँसुरी, अजर, जदपि प्राचीन,
भक्त-श्रवण आजहु सुनत, युग संगीत नवीन।

चौपाई—सकल जो स्वल्प-मतिहु यश गायी,
सो केवल हरि-चरित बड़ाई।
प्राची दिशा निरखि रवि-रोली,
देत कमल विह्वल मुख खोली।
भरत भुवन जब तंत्री-नादा,
प्रकटत फणिहु सलय आह्लादा।
बौरत विपिन विलोकि रसाला,
गावत कोकिल विवश विहाला।
व्योम विलोकि घटा घन घोरा,
उठत नाचि आपुहि वन मोरा।
उपवन निरखि यूथिका फूली,
गुंजत भृंग रंग निज भूली।
गगन विलोकि उदित रजनीशा,
गावत लहरि आपु वारीशा।

चंद्रकांत मणि उरह पसीजी,
आपुहि आपु जात रस भीजी।

दोहाः—हरि-चरितहि विरचत कविन, रचत चरित कवि नाहि,
अस गुनि गावहुँ हरि-सुयश, सुनि भ्रम भीति नसाहिं।६

चंद्रकांत मणि=वह पत्थर जो चंद्र-किरणों के पड़ने पर पसीजने लगता है।

सुमित्रानन्दन पन्त

सुमित्रानन्दन पंत हिन्दी के क्रान्तिकारी कवि हैं। यह छायावाद के प्रवर्तक तथा सौन्दर्य-प्रधान कल्पना के गायक माने जाते हैं। इनकी रचनाओं ने हिन्दी कविता का एक प्रकार से ढाँचा ही बदल दिया है। प्रकृति के विभिन्न रूप ऊषा, सन्ध्या, निशा, तारिका, चंद्रिका, लहर आदि का—मानसिक भाव आशा, कल्पना, स्मृति आदि का वर्णन कवि ने सजीव प्राणियों के रूप में किया है। मानव के जीवन-सौन्दर्य का चित्रण भी श्रेष्ठ है। काव्य की भाषा को कवि ने तत्सम शब्दों के प्रचुर प्रयोग से मधुर और सुन्दर बना दिया है। पंतजी ने पुराने छन्द-बन्धनों को तोड़ कर कविता में एक नई परिपाटी चलाई है। आपकी काव्यशैली और भाषा का प्रभाव आपके छोटे बड़े प्रायः सभी सम-कालीन कवियों पर पड़ा है।

पल्लव, वीणा, गुंजन, ग्राम्या, युगवाणी आदि इनके काव्य-संग्रह हैं। पंत जी उच्च कोटि के गद्य-लेखक भी हैं।

बाल-प्रश्न

माँ ! अल्मोड़े में आये थे जब राजर्षि विवेकानन्द।
तब मग में मखमल बिछवाया दीपावलि की विपुल अमन्द ॥
बिना पाँवडे पथ में क्या वे जननि ! नहीं चल सकते थे ?
दीपावलि क्यों की ? क्या माँ वे मन्द दृष्टि कुछ रखते थे ?
कृष्णे ! स्वामीजी तो दुर्गम मग में चलते हैं निर्भय।
दिव्य दृष्टि है, कितने ही पथ पार कर चुके कंटकमय ॥
वे मखमल तो भक्ति भाव थे फैले जनता के मन के।
स्वामीजी तो प्रभावान हैं वे प्रदीप थे पूजन के ॥

मैं नहीं चाहता चिर-सुख

मै नहीं चाहता चिर-सुख,
चाहता नहीं अविरत-दुख;
सुख-दुख की खेल मिचौनी,
खोले जीवन अपना मुख।

सुख-दुख के मधुर मिलन से,
यह जीवन हो परिपूरन;
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि से ओझल हो घन।

जग पीडित है अति दुख से,
जग पीडित रे अति-सुख से,
मानव-जग में बँट जावे,
दुख सुख से औ सुख दुख से ।

अविरत दुख है उत्पीडन,
अविरत सुख भी उत्पीड़न;
दुख-सुख की निशा-दिवा में,
सोता-जगता जग-जीवन ।

यह साँझ-उषा का आँगन,
आलिंगन विरह-मिलन का;
चिर हास अश्रुमय आनन,
रे इस मानव-जीवन का !

श्रद्धा के फूल

बापू मानव नहीं देवता थे। उनके सब कार्य देव-तुल्य थे। जीवन को अधिकाधिक उत्तम गुणों से युक्त करना उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी और ऐसे गुण-सम्पन्न भारतीयों से बना हुआ नूतन राष्ट्र ही उनका सच्चा स्मारक होगा।

अतर्धान हुआ फिर देव विचर धरती पर,
स्वर्ग-रुधिर से मर्त्यलोक की रज को रँग कर !

टूट गया तारा, अंतिम आभा का दे वर,
जीर्ण जाति मन के खँडहर का अंधकार हर !
अंतर्मुख हो गई चेतना दिव्य अनामय
मानस लहरों पर शतदल-सी हँस ज्योतिर्मय !
मनुजों मे मिल गया आज मनुजों का मानव
चिर पुराण को बना आत्म बल से चिर अभिनव
आओ, हम उसको श्रद्धाजलि दे देवोचित
जीवन-सुन्दरता का घट मृत को कर अर्पित;
मगलप्रद हो देव-मृत्यु यह हृदयविदारक
नव भारत हो बापू का चिर जीवित-स्मारक।
बापू की चेतना बने पिक का नव कूजन,
बापू की चेतना बसन्त बखेरे नूतन !

आलोचक और कवि

हिन्दी के एक प्रमुख आचार्य ने एक बार छायावादी कविता की कड़ी आलोचना की थी जिसमें पन्त जी की कविताओं की ओर विशेष संकेत था। इस कविता के 'क' अंश मे समालोचक का तर्क है और 'ख' अंश में कवि का उत्तर, जिसके अनुसार कविता की मूल प्रेरणा अध्ययन, ज्ञान प्रदर्शन, नियम-पालन आदि नही वरन् मन के आवेगों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

अनामय=विकार-रहित। चिर पुराण=वृद्ध भारत की ओर सकेत है।

(क)

तेरा कैसा गान,
विहगम ! तेरा कैसा गान ?
न गुरु से सीखे वेद-पुरान,
न षट् दर्शन न नीति-विज्ञान;
तुझे कुछ भाषा का भी ज्ञान,
काव्य, रस, छन्दों की पहचान ?
न पिक-प्रतिभा का कर अभिमान,
मनन कर, मनन, शकुनि नादान !
हँसते हैं विद्वान,
गीत-खग तुझ पर सब विद्वान !
दूर, छाया-तरु-वन में वास,
न जग के हास-अश्रु ही पास;
अरे, दुस्तर जग का आकाश,
गूढ़ रे छाया-ग्रथित-प्रकाश;
छोड़ पखों की शून्य-उड़ान,
वन्य-खग ! विजन-नीड़ के गान ।

(ख)

मेरा कैसा गान,
न पूछो मेरा कैसा गान ।

पिक-प्रतिभा=कोयल की मधुर गान क्षमता । शकुनि=पक्षी । छाया ग्रथित-प्रकाश=आकाश के साथ अन्धकार जुड़ा हुआ है ।

आज छाया वन-वन मधुमास.
मुग्ध-मुकुलों में गन्धोच्छ्वास;
लुढ़कता तृण-तृण में उल्लास,
डोलता पुलकाकुल वातास;
फूटता नभ में स्वर्ण-विहान,
आज मेरे प्राणों में गान।

मुझे न अपना ध्यान,
कभी रे रहा न जग का ज्ञान!
सिहरते मेरे स्वर के साथ,
विश्व-पुलकावलि से तरु-पात;
पार करते अनन्त अज्ञात,
गीत मेरे उठ सायं-प्रात;
गान ही मे रे मेरे प्राण,
अखिल-प्राणों में मेरे गान।

———

सुभद्राकुमारी चौहान

सुभद्राकुमारी चौहान की कविता सरलता और भावों की निष्कपट अभिव्यक्ति में अनूठा स्थान रखती है। देश-प्रेम की भावना का संचार करने में इन्होंने बड़ी काव्य-कुशलता दिखाई है। अज्ञात अदृश्य की ओर संकेत न करके इनकी कविता सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण करती है। स्वतन्त्रता के आन्दोलनों में बराबर भाग लेते रहने के कारण इनकी कविता की पृष्ठभूमि में एक यथार्थता आ गई है। इनकी रचनाओं में नैसर्गिक प्रवाह मिलता है।

जहाँ इन्होंने कोमल अनुभूतियों का चित्रण किया है, वहाँ इनकी भाषा मृदु है, जहाँ वीररस है वहाँ भाषा में ओज है। राष्ट्रीयता की भावना और भाषा की सरसता के कारण इनकी कुछ कविताओं का देश भर में प्रचार हुआ है।

'मुकुल' इनका कविता-सग्रह है। इन्होंने कुछ सफल कहानियाँ भी लिखी हैं। इनको दो बार सेकसरिया-पुरस्कार मिला था। मध्यप्रदेश को ऐसी कवयित्री का जीवन-क्षेत्र होने का अभिमान रहेगा।

झाँसी की रानी की समाधि पर

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने सन् १८५७ ई० के भारतीय स्वतंत्रता के प्रथम संग्राम में अपूर्व वीरता दिखाई। उनकी समाधि एक राष्ट्रीय तीर्थ है। उसे देखकर कवयित्री के मन में जो भावनायें उठीं वे इस कविता में अंकित हैं।

इस समाधि मे छिपी हुई है,
एक राख की ढेरी।
जलकर जिसने स्वतंत्रता की,
दिव्य आरती फेरी॥
यह समाधि, यह लघु समाधि है,
झाँसी की रानी की।
अन्तिम लीलास्थली यही है,
लक्ष्मी मरदानी की॥
यहीं कहीं पर बिखर गई वह,
भग्न विजय-माला - सी।
उसके फूल यहाँ सञ्चित हैं,
है यह स्मृति-शाला-सी॥
सहे वार पर वार अन्त तक,
लड़ी वीर बाला-सी।

आहुति-सी गिर चढ़ी चिता पर,
चमक उठी ज्वाला - सी ।
बढ़ जाता है मान वीर का,
रण मे बलि होने से ।
मूल्यवती होती सोने की,
भस्म यथा सोने से ॥
रानी से भी अधिक हमे, अब,
यह समाधि है प्यारी ।
यहाँ निहित है स्वतन्त्रता की,
आशा की चिनगारी ॥
इससे भी सुन्दर समाधियाँ,
हम जग मे है पाते ।
उनकी गाथा पर निशीथ मे,
क्षुद्र जन्तु ही गाते ॥
पर कवियों की अमर गिरा में,
इसकी अमिट कहानी ।
स्नेह और श्रद्धा से गाती,
है वीरो की बानी ॥
बुन्देले हरबोलों के मुख,
हमने सुनी कहानी ।

निशीथ=अर्द्धरात्रि ।

खूब लड़ी मरदानी वह थी,
झाँसी वाली रानी।
यह समाधि, यह चिर समाधि,
है झाँसी की रानी की।
अन्तिम लीलास्थली यही है,
लक्ष्मी मरदानी की॥

लोहे को पानी कर देना

यह कविता महात्मा गाँधी के प्रति लिखी गई है। विज्ञान की चकाचौंध से चकित पश्चिमी सभ्यता पशुबल को ही सब कुछ समझ बैठी थी। पारस्परिक वैमनस्य और शस्त्रीकरण की होड के इस युग में महात्मा गाँधी ने अहिंसा और प्रेम का मंत्र फूँक मनुष्य को अन्याय से लडने के लिए आत्मबल का एक नया अस्त्र दिया जिसने पशुबल को परास्त किया।

जब जब भारत पर भीर पड़ी असुरों का अत्याचार बढ़ा,
मानवता का अपमान हुआ, दानवता का परिवार बढा।
तब तब हो करुणा से प्लावित करुणाकर ने अवतार लिया,
बनकर असहायों के सहाय दानव-दल का संहार किया।

दुख के बादल हट गये, ज्ञान का चारों ओर प्रकाश दिखा,
कवि के उर में कविता जागी, ऋषि-मुनियों ने इतिहास लिखा।
जन-जन में जागा भक्ति भाव, दिशि-दिशि में गूँजा यशोगान,
मन-मन में पावन प्रीति जगी, घर-घर में थे सब पुण्यवान।

सतयुग त्रेता देता बीता यश-सुरभि राम की फैलाता,
द्वापर भी आया, गया—कृष्ण की नीति-कुशलता फैलाता।
कलयुग आया—उसके जाते जाते गाँधी का युग आया,
गाँधी की महिमा फैल गई, जग ने गाँधी का गुण गाया?

कवि गदगद हो अपनी अपनी श्रद्धाजलियाँ भर भर लाये,
'रोमा रोलाँ', 'रवि ठाकुर' ने उल्लसित गीत यश के गाये।
इस समारोह में रजकण सी मैं क्या गाऊँ कैसे गाऊँ?
इतनी विभूतियों के सम्मुख घबराती हूँ कैसे गाऊँ?

दुनियाँ की सब आवाजों से वह ऊपर उठ उठ जाती है,
लोहे से लोहा बजने की आवाज इस तरफ आती है।
विज्ञान ज्ञान की परिधि आज अब नहीं किसी बंधन में है,
सब ओर एक ही बात एक ही चर्चा यह जन जन में है।

कैसे लोहे में धार करें? कैसे लोहे की मार करें?
मानव दानव बन किस प्रकार आपस में घोर प्रहार करें।

रोमा रोलां=फ्रांस का एक प्रसिद्ध लेखक।

चल जाय तोप जल जाय विश्व, बम लेकर निकले वायुयान,
लोहे के गोले बरस पड़े, वर्षा की बूँदों के समान।

यह लोहे के युग की महिमा—श्मशान बन गये ग्राम गाम,
यह लोहे के युग की क्षमता मिट गये धरा के धाम धाम।
इस लौह पान ने क्या न किया जीवित ग्रामों को गड़ा दिया,
इस लौह-ज्ञान ने क्या न किया—गिरजे से गिरजा लड़ा दिया।

उस ओर साधना है ऐसी इस ओर अरक्षित औ' अज्ञान,
फावड़ा कुदाली वाले ये मजदूर और भोले किसान।
आशा करते हैं एक रोज वह अवतारी फिर आवेगा,
आसुरी कृत्य करके समाप्त फिर दुनियाँ नई बसावेगा।

पर किसे ज्ञात था जग में वह अवतरित हो चुका है ज्ञानी,
जिसके तप बल से झुके सभी दुनियाँ के ज्ञानी विज्ञानी।
वह कौन ? एक मुट्ठी भर का अध-नंगा सा बूढ़ा फकीर,
जिसके माथे पर सत्य-तेज, जिसकी आँखों में विश्व-पीर।

जिसकी वाणी में शक्ति, भेद जो कुलिश कपाटों को जाती,
जिसके अन्तर का प्रेम देख असि-धारा 'कुंठित हो जाती।
वह गाँधी हम सबका 'बापू' वह अखिल विश्व का प्यारा है,
वह उनमें से ही एक जिन्होंने आकर विश्व उबारा है।

हैं बुद्ध सुखी उसमें अपने ही परम-धर्म का ज्ञान देख,
हैं ईसा खुश बलिदान देख, पैगम्बर खुश ईमान देख।

बह चली तोप, गल चले टैंक बन्दूके पिघली जाती हैं,
सुनते ही मंत्र अहिंसा का अपने में आप समाती हैं।

पाषाण-हृदय जो थे, देखो वे आज पिघल कर मोम हुए,
मैं 'राम' बनूँ इस आशय से, 'रावण' के घर में होम हुए।
है यही आदि गाँधी-युग का, जो बापू ने विस्तारा है,
हैं यही अन्त लोहे के दिन, जिनका विज्ञान सहारा है।

विज्ञानी की है परम सिद्धि, जग को लोहे से भर देना,
है हँसी खेल तुमको बापू, लोहे को पानी कर देना।
इस तुकबन्दी मे सार नहीं, पर पूजा की दो बूँदे लो,
इन बूँदों में छोटा-सा कण उन पावन बूँदों का भर दो।

जो आगाखाँ के महलो में छल-छल करती थीं छलक पड़ीं,
उन दो विभूतियों की स्मृति में बरबस आँखों से ढलक पड़ीं।

दो विभूतियों=कस्तूरबा और महादेव देसाई।

श्रीमती महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा आधुनिक युग की मीरा कही जाती हैं। उनके गीतों में यत्र-तत्र वैष्णव स्वरलहरी मिलती है जिसमें करुणा और वेदना की कसक है। अँग्रेजी की अलंकार-प्रधान भाषा-शैली की छाप महादेवी की कविता पर पड़ी है। आपकी कल्पना की उड़ान और भावों की कोमलता उल्लेखनीय है। प्रकृति के व्यापारों का चित्रण बड़ा ही मार्मिक हुआ है।

इनकी कविता में रहस्यवाद की झलक भी कहीं-कहीं देखने को मिलती है। नारीहृदय का आत्म-निवेदन और आत्म-समर्पण आपकी कविता की विशेषता है। आप जीवन के बहुमुख चित्रण को अधिक महत्त्व न देकर भावनाओं की तीव्रता और सांकेतिकता को ही काव्यकला का पूर्ण रूप मानती हैं।

नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्य गीत आदि इनके कविता-संग्रह हैं। देवी जी उच्च कोटि की गद्य-लेखिका भी हैं। 'शृंखला की कड़ियाँ' और 'अतीत के चलचित्र' आपके गद्य-संग्रह हैं। आप इस समय प्रयाग-विद्यापीठ की प्रधानाध्यापिका हैं।

फूल

फूल की कोमलता, मधुरता और सौन्दर्य को देखकर कवयित्री उसे स्वर्ग से आया हुआ मानती है। उसे आश्चर्य होता है कि ऐसी सुकुमार वस्तु इस कठोर संसार में कैसे आ गई जहाँ पग पग पर काँटे बिछे हैं। किन्तु जब विधिवशात् वह यहाँ आ गया है तब उसे प्रसन्नतापूर्वक जीवन की कठिनाइयों का सामना करना चाहिए।

मधुरिमा के, मधु के अवतार, सुधा-से, सुषमा-से, छविमान,
आँसुओं में सहमे अभिराम, तारकों-से हे मूक अजान!
सीखकर मुस्काने की बान,
कहाँ आये हो कोमल प्राण?
स्निग्ध रजनी से लेकर हास, रूप से भरकर सारे अंग,
नये पल्लव का घूँघट डाल, अछूता ले अपना मकरन्द,
ढूँढ पाया कैसे यह देश?
स्वर्ग के हे मोहक सदेश!
रजत किरणों से नैन पखार, अनोखा ले सौरभ का भार,
छलकता लेकर मधु का कोष, चले आये एकाकी पार,
कहो क्या आये मारग भूल?
मंजु छोटे मुस्काते फूल!

मकरन्द=पराग।

उषा के छू आरक्त कपोल, किलक पड़ता तेरा उन्माद।
देख तारों के बुझते प्राण, न जाने क्या आ जाता याद ?
हेरती है सौरभ की हाट,
कहो किस निर्मोही की बाट ?

चाँदनी का शृंगार समेट अधखुली आँखों की यह कोर,
लुटा अपना यौवन अनमोल ताकती किस अतीत की ओर ?
जानते हो यह अभिनव प्यार,
किसी दिन होगा कारागार ?

कौन वह है सम्मोहन राग खींच लाया तुमको सुकुमार ?
तुम्हें भेजा जिसने इस देश कौन वह है निष्ठुर कर्तार ?
हँसो, पहनो काँटों के हार,
मधुर भोलेपन के संसार !

अलि से

इन आँखों ने देखी न राह कहीं,
इन्हे धो गया नेह का नीर नहीं,
करती मिट जाने की साध कभी,
इन प्राणों को मूक अधीर नहीं.

अतीत=भूतकाल।

अलि, छोड़ी न जीवन की तरणी,
उस सागर में जहाँ तीर नहीं !
कभी देखा नहीं वह देश जहाँ,
प्रिय से कम मादक पीर नहीं !

जिसको मरुभूमि समुद्र हुआ,
उस मेघव्रती की प्रतीति नहीं
जो हुआ जल दीपकमय उससे,
कभी पूछी निबाह की रीति नहीं

मतवाले चकोर से सीखी कभी,
उस प्रेम के राज्य की नीति नहीं,
तू अकिञ्चन भिक्षुक है मधु का,
अलि तृप्ति कहाँ जब प्रीति नहीं !

पथ में नित स्वर्ण-पराग बिछा,
तुझे देख जो फूली समाती नहीं !
पलकों से दलों में घुला मकरन्द—
पिलाती कभी अनखाती नहीं

किरणों में गुँथी मुक्तावलियाँ,
पहनाती रही सकुचाती नहीं,
अब भूल गुलाब में पंकज की,
अलि कैसे तुझे सुधि आती नहीं !

मेघव्रती=चातक।

करते करुणा-घन छाँह वहाँ,
झुलसाता निदाघ-सा दाह नहीं,
मिलती शुचि आँसुओं की सरिता,
मृगवारि का सिन्धु अथाह नहीं,
हँसता अनुराग का इन्दु सदा,
छलना की कुहू का निबाह नहीं,
फिरता अलि भूल कहाँ भटका,
यह प्रेम के देश की राह नहीं !

रश्मि

यह कविता सूर्य-किरण के प्रति है। इसमें प्रभात का चित्रात्मक वर्णन है। प्रथम किरण के आते ही किस प्रकार समस्त सृष्टि का रूप बदल जाता है, यह बड़े सुकुमार रंगों में चित्रित किया गया है।

चुभते ही तेरा अरुण बान !
बहते कन कन से फूट फूट, मधु के निर्झर से सजल गान !
इन कनक रश्मियों में अथाह,
लेता हिलोर हिम-सिन्धु जाग;

कुहू=अमावस। हिम-सिन्धु=कुहरे का समुद्र।

बुद्‌बुद्‌ से वह चलते अपार,
उसमें विहगों के मधुर राग;

बनती प्रवाल का मृदुल कूल, जो क्षितिज-रेख थी कुहर-म्लान !

नव कुन्द-कुसुम से मेघ-पुंज,
बन गये इन्द्र धनुषी वितान;
दे मृदु कलियों की चटक ताल,
हिम-बिन्दु नचाती तरल प्राण,

धो स्वर्ण प्रात में तिमिर गात, दुहराते अलि निशि-मूकतान।

सौरभ का फैला केश-जाल,
करतीं समीर परियाँ विहार,
गीली-केसर-मद झूम झूम,
पीते तितली के नव कुमार,

मर्मर का मधु संगीत छेड़, देते हैं हिल पल्लव अजान !

फैला अपने मृदु स्वप्न पंख,
उड़ गई नींद-निशि क्षितिज पार;
अध खुले दृगों के कंज-कोष
पर छाया विस्मृति का खुमार;

रँग रहा हृदय ले अश्रु-हास; यह चतुर चितेरा सुधि विहान !

बुद्‌बुद्‌=बुलबुला। वितान=शामियाना। तिमिर=अन्धकार सा काला। अश्रु-हास=दुख-सुख। सुधि-विहान=स्मृति का सवेरा।

संसार

संसार विचित्र और रहस्यमय है। जो जिस दृष्टि से देखता है उसे वैसा दिखाई देता है। यहाँ कवयित्री ने प्रकृति के विभिन्न रूपों पर दृष्टिपात करते हुए संसार के सम्बन्ध में कुछ धारणायें प्रस्तुत की हैं।

निश्वासों का नीड़ निशा का
बन जाता जब शयनागार,
लुट जाते अभिराम छिन्न
मुक्तावलियों के बन्दनवार;
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार,
आँसू से लिख-लिख जाता है 'कितना अस्थिर है संसार !'

हँस देता जब प्रात, सुनहरे
अंचल में बिखरा रोली,
लहरों की बिछलन पर जब
मचली पड़तीं किरणें भोली,
तब कलियाँ चुपचाप उठा कर पल्लव के घूँघट सुकुमार,
छलकी पलकों से कहती है 'कितना मादक है संसार !'

देकर सौरभ-दान पवन से
कहते जब मुरझाये फूल,

नीड़=घोसला। मुक्तावलियाँ=तारों की पंक्ति। नीरव...हाहाकार=रोते हुए से तारों का मूक शोक। आँसू=ओस।

'जिसके पथ मे बिछे वही
क्यों भरना इन आँखों में धूल ?'
'अब इनमें क्या सार' मधुर जब गाती भौंरों की गुञ्जार,
मर्मर का रोदन कहता है 'कितना निष्ठुर है संसार ?'
स्वर्ण वर्ण से दिन लिख जाता
जब अपने जीवन की हार,
गोधूली नभ के आँगन में
देती अगणित दीपक बार,
हँस कर तब उस पार तिमिर का कहता बढ़ बढ़ पार.बार,
'बीते युग पर बना हुआ है अब तक मतवाला संसार !'
स्वप्न-लोक के फूलों से कर
अपने जीवन का निर्माण,
'अमर हमारा राज्य'. सोचते
हैं जब मेरे पागल प्राण,
आकर तब अज्ञात देश से जाने किसकी मृदु झंकार,
गा जाती है करुण स्वरों मे 'कितना पागल है संसार !'

आँखों=नेत्राकार पँखुड़ियाँ। मर्मर=पत्तों का सरसर शब्द। गोधूली नभ .... बार=दिन की तो हार हो चुकी है किन्तु गोधूली अब भी प्रकाश बनाये रखने में प्रयत्नशील है। दीपक=तारे। उस पार=पूर्व क्षितिज के पार। स्वप्नलोक के फूलों से=मधुर कल्पनाओं द्वारा।

हरिवंश राय 'बच्चन'

हरिवंश राय 'बच्चन' हिन्दी के लोकप्रिय कवियों में हैं। ललित कल्पना की अपेक्षा सहज कल्पना इन्होंने अपनाई है। इन्होंने जीवन के बड़े बड़े सत्यों और विश्वासों को बड़ी सहूलियत के साथ कह दिया है। ऊँचे और व्यापक भावों को सरलतम रूप में कह देने की शैली उर्दू कविता से लेकर भी कवि ने उसे हिन्दी में एक मौलिक रूप दिया है। यही उनकी लोकप्रियता के कारण हैं।

देश के मध्यवर्गी सर्वसाधारण जीवन के हर्षविषाद की विभिन्न मनोवृत्तियों का सजीव चित्रण कवि ने किया है। इनके कुछ गीतों में प्रचण्ड आशावाद और उत्साह है और कुछ में विषाद का सन्तप्त रूप। यह हिन्दी के गीतिकार में अपना अनूठा स्थान रखते हैं। अभिव्यक्ति की स्पष्टता और भाषा की सरलता कवि की सबसे बड़ी विशेषता है। इनका उक्ति-लाघव उल्लेखनीय है। संगीत की माधुरी इनकी कविता में फूट पड़ी है। इनकी रचनाओं ने हिन्दी काव्य को जनता के निकट पहुँचाने में सहायता दी है।

मधुशाला, मधुबाला, मधु-कलश, एकान्त संगीत, निशा-निमन्त्रण, सतरङ्गिनी आदि बच्चन की प्रसिद्ध कविता-पुस्तकें हैं। आजकल ये प्रयाग-विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के अध्यापक हैं।

आशे !

निराश हृदय में आशा का संचार किस प्रकार नई शक्ति और दृढ़ता प्रदान करता है। यह कवि ने इस कविता में दिखाया है।

भूल तब जाता दुःख अनन्त,
निराशा पतझड़ का हो अन्त,
हृदय में आता पुनः वसंत,
दमक उठता मेरा मुख म्लान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान।

(२)

पथिक जो बैठा हिम्मत हार,
जिसे लगता था जीवन भार,
कमर कसता होता तैयार,
पुनः उठता करता प्रस्थान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान।

(३)

डूबते पा जाता आधार,
सरस होता जीवन निस्सार,
सार-मय फिर होता संसार,

सरल हो जाते कार्य महान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान ।

(४)

शक्ति का फिर होता संचार,
सूझ पड़ता फिर कुछ कुछ पार,
हाथ मे फिर लेता पतवार,
पुनः खेता जीवन-जलयान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान ।

सुषमा

ज्ञानी, कवि और प्रेमी तीनो अपने अपने दृष्टिकोण से सुन्दरता की परिभाषा बताते हैं । किन्तु सामान्य व्यक्ति के मतानुसार सुन्दरता वही है जो आनन्द प्रदान करे ।

(१)

किसी समय ज्ञानी, कवि प्रेमी,
तीनों एक ठौर आए,
सुषमा ही से थे सबने,
अपने मन-वांछित फल पाए,

सुषमा ही उपास्य देवी थी
तीनों की त्रय कालों मे,
पर विचार सुषमा पर सबने
अलग-अलग ही ठहराए !

(२)

वह सुषमा थी नहीं, न उसने
तुझको अगर प्रकाश दिया।'
'वह सुषमा थी नहीं, न उसने
तुझे अगर उन्मत्त किया।'
ज्ञानी औ' कवि की वाणी सुन
प्रेमी आहे भर बोला,
सुषमा न थी, नहीं यदि उसने
आत्मसात् कर तुझे लिया !'

(३)

एक व्यक्ति साधारण उनकी
बातें सुनने को आया,
मौन हुए जब तीनों तब वह
उच्चस्वर से चिल्लाया !
'मूढ़ो, मैंने अब तक उसको
कभी नहीं सुषमा समझा,

उन्मत्त=मस्त। आत्मसात्=अपने वश में।

जिसके निकट पहुँचते ही
आनन्द नहीं मैंने पाया !

(४)

एक बिंदु पर अब तीनों के
मिल जाने की आशा थी,
क्या अंतिम ही सबसे अच्छी
सुषमा की परिभाषा थी ?

निशा-निमंत्रण

संध्या हो रही है। कवि ने बाहरी दुनिया का चित्र खींचते हुए अपनी तत्कालीन वियोग-जन्य मानसिक स्थिति की झलक दिखाकर वातावरण को सजीव बना दिया है।

(१)

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है।
हो जाय न पथ में रात कहीं,
मंजिल भी तो है दूर नहीं—
यह सोच थका दिन का पंथी भी जल्दी-जल्दी चलता है
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है।

(२)

बच्चे प्रत्याशा में होंगे,
नीड़ों से झाँक रहे होंगे—
यह ध्यान परों में चिड़ियों के भरता कितनी चंचलता है !
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है।

(३)

मुझसे मिलने को कौन विकल ?
मैं होऊँ किसके हित चंचल—
यह प्रश्न शिथिल करता पद को, भरता उर में विह्वलता है।
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है।

रात आधी हो गई है

(१)

जागता मैं आँख फाड़े,
हाय सुधियों के सहारे।
जब कि दुनियाँ स्वप्न के जादू-भवन में खो गई है।
रात आधी हो गई है।

नीड़=घोंसला।

(२)

सुन रहा हूँ शांति इतनी।
है टपकती बूँद जितनी।
ओस की, जिनसे द्रुमों का गात रात भिगो गई है।
रात आधी हो गई है।

(३)

दे रही कितना दिलासा,
आ झरोखे से ज़रा-सा
चाँदनी पिछले पहर की पास मे जो सो गई है।
रात आधी हो गई है।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

रामेश्वर शुक्ल 'अचल' प्रगतिवाद के कवि हैं। इनमें छायावाद के विरुद्ध विद्रोह की प्रवृत्ति पाई जाती है। इन्होंने हिन्दी कविता को कोरी कल्पना से यथार्थता के क्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया है। इनकी कविता में सामाजिक संघर्ष तथा युग-परिवर्तन के चित्र हैं। एक ओर इन्होंने जीवन के सौंदर्य का विशद चित्रण किया है तो दूसरी ओर जीवन की कुरूपता के सामाजिक कारणों पर भी प्रकाश डाला है।

छन्द और भाव-प्रकाशन-शैली दोनों में कवि ने नये नये प्रयोग किये हैं। तीव्र अनुभूति, मार्मिक भाव और प्रवाहमयी भाषा यह 'अंचल' की कविता के प्रधान गुण हैं।

मधूलिका, अपराजिता, किरण वेला, करील, लाल चूनर आदि इनके कविता-संग्रह हैं। आप उपन्यासकार और समालोचक भी हैं। आजकल आप रावर्टसन कालेज जबलपुर में अध्यापक हैं।

वन-फूल

संघर्ष जीवन है, विश्राम और विलास मृत्यु। इसी सत्य को कवि ने फूल और तारे पर घटित करते हुए जीवन की समस्त उन्नति की प्रेरणा कठिनाइयों का सामना करने में बताई है।

फूल काँटों में खिला था सेज पर मुरझा गया

जगमगाता था उषा-सा कंटकों में वह सुमन
स्पर्श से उसके तरंगित था सुरभिवाही पवन
ले कपूरी पँखुरियों में फुल्ल मधुऋतु का सपन

फूल काँटों में खिला था सेज पर मुरझा गया

प्रखर रवि का ताप—झंझा के असह झोंके कठिन
कर न पाये उस तरुण संघर्ष-कामी को मलिन
किन्तु झाड़ी से अलग हो रह न पाया एक दिन

फूल काँटों में खिला था सेज पर मुरझा गया

जो अडिग रहता अड़ा तूफान में बरसात में
टूट जाता है वही तारा शरद की रात में
निहित जीवन की प्रगति भी द्वन्द्व में, आघात में

फूल काँटों में खिला था सेज पर मुरझा गया

सुरभिवाही=सुगन्धयुक्त। कामी=इच्छुक। मधुऋतु=बसन्त।

वर्षान्त के बादल

वर्षा बीत चली है। वर्ष भर के लिये वर्षा के बादल आकाश से विदा ले रहे हैं। हरी भरी शस्यश्यामलता धरती, नदी, खेत और पहाड़ सब उन्हें विदाई दे रहे हैं।

जा रहे वर्षान्त के बादल
हैं बिछुड़ते वर्ष भर को नील जलनिधि से
स्निग्ध कज्जलिनी निशा की ऊर्मियों से
स्नेह-गीतों की कड़ी-सी रागरंजित ऊर्मियों से
गगन की शृंगार सज्जित अप्सराओं से
किस महावन को चले
अब न रुकते, अब न रुकते ये गगनचारी
नींद आँखों में बसी——गति में शिथिलता
किस गुफा में लीन होगे
सान्ध्य-विहगों-से थके डैने लिये भारी
साथ इनके जा रहा अगणित विरहिणी विरहियों का दाह
दे रही अनिमेष नयनों से हरित वसुधा विदाई
किस सुदूर निभृत कुटी में पूजिता सुधि की इन्हें
फिर याद आई

कज्जलिनी = काली। शृंगार-सज्जित अप्सराओं = बिजलियों। निभृत = एकान्त।

भर गई आ रिक्त कानों मे
किस कमल वन में अनिद्रित शारदीया की
करुण चंचल रुलाई
जा रहे आलोक-पथ से मंद गति
वर्षान्त के बादल—
हैं सलिल प्लावित नदी-नद-ताल-पोखर
वेग-विह्वल झर रहे गिरि-सोत-निर्झर
दे भरे मन से विदा-कर कुसुम किरणों से नमन
देखते अंकुरित नूतन फुल्ल खेत
छोड़ उत्सुक बन्धुओं के नेत्रों का प्यार
छोड़ लघु पौधे व्यथातुर शस्य-शालि अपार
खोह अंजन की कहाँ वह गुरु गहन
आगार वह विश्राम मुग्ध विराम की
जा रहे जिसमें चले ये थके वनपशु-से
प्यास प्राणों में लिये किसके मिलन की
भर जगत में नव्य जीवन
जा रहे किस प्रिया की सुधि-से घिरे
नयी आकांक्षा भरे वर्षान्त के बादल

—:o:—

अंजन की =काली ।

मौन ममता

दृढ़ संकल्प मनुष्य को स्वाभाविक शक्ति देता है। कवि के मतानुसार उस शक्ति की मौन ममता ही मनुष्य को कर्तव्य-पथ पर निरन्तर आगे बढ़ाती रहती है। उसी शक्ति का वरद हस्त उसे जीवन-संघर्षों का सामना करने की प्रेरणा देता है।

शीश के ऊपर तुम्हारी मौन ममता का अभय है।

गूँजता है कान में उस अनकहे आशीस का स्वर,
जिन्दगी में जो अभावों औ' दुखों का मूक सहचर;
सामने साकार है पथ-सा असीमित वर तुम्हारा,
है जहाँ कर्तव्य की—दुर्दम प्रगति की प्राण-धारा;
ठोकरें लगतीं—खड़ा होता मगर गिर-गिर निरन्तर,
एक धुन ले, कर रहा निर्माण सौ-सौ बार मिटकर;

है यही बल विघ्न पर विश्वास की होती विजय है,
शीश के ऊपर तुम्हारी मौन ममता का अभय है।

मार्ग के अवरोध की चट्टान जल बनती पिघल कर,
मार्ग के काँटे मुझे बनते प्रसूनों से मृदुलतर;
दे मुझे वरदान अपराजेय अविनाशी बनाया,
दग्ध मानस की व्यथा को दीप-सा जलना सिखाया;

जानता हूँ किस दिशा से स्नेह का यह स्रोत आता,
शक्ति की बिखरी उमंगों में नई आभा जगाता;

एक इस संकल्प में सारी द्विधा औ' द्वैत क्षय है,
शीश के ऊपर तुम्हारी मौन ममता का अभय है !

तुम कहीं भी हो—बँधा है सूत्र रक्षा का तुम्हारा,
है मुझे लगता यही प्रतिक्षण मुझे तुमने पुकारा;
है तुम्हारी याद का मंगल कवच कल्याण मेरा,
दूर कर देता विषमता से थके मन का अँधेरा,
है मुझे घेरे खड़े संघर्ष-तक्षक फन उठाये,
जिन्दगी में दूर तक फुफकार जिनकी भीति छाये;

है अमर उल्लास—बल के मेरु-सा दृढ यह हृदय है,
शीश के ऊपर तुम्हारी मौन ममता का अभय है।

———

आभा=प्रकाश। विषमता=सामाजिक असमानता। संघर्ष तक्षक=विरोधरूपी साँप।

परिशिष्ट (क)

रस-विवेचन

रस और काव्य

रस ही काव्य का काव्यत्व है और रस ही नाट्य का प्राण है। रसरहित काव्य केवल तुकबन्दी है और रस-विहीन नाटक का मूल्य कुछ नहीं है; पर इस कथन से यह नहीं समझना चाहिये कि रस की स्थिति काव्य अथवा नाटक में होती है। रस तो आनन्दानुभूति है, जो सहृदय जनों के चित्त में काव्य पढ़ने, सुनने अथवा अभिनय देखने से होती है। काव्यादि इस आनन्द-वृत्ति के उद्बोधक (जगानेवाले) मात्र हैं।

रस और स्थायी भाव

हमारे हृदय में भय, उत्साह, शोकादि भाव स्थायी रूप से रहते हैं, इसीलिये ये साहित्य-शास्त्र में स्थायी भाव कहलाते हैं। ये समय-समय पर कारणवश व्यक्त हुआ करते हैं। व्यवहार में निजत्व-भावना के कारण ये व्यक्तिगत तथा हर्ष-विषाद युक्त होते हैं; परन्तु काव्य-कला या अभिनय-कुशलता इनको इतना ऊँचा उठाती है कि पाठक या दर्शक अपने-पराये के भेद को भूलकर और सब प्रकार के सम्बन्धों से मुक्त होकर इन भावों

को पूर्ण तन्मयता से अपनाते हैं, जिससे एक अलौकिक तथा अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती है। यही भावास्वादन या अलौकिक आनन्द-वृत्ति रस है। इस प्रकार परिपक्व तथा आस्वादन योग्य होने से जिन स्थायी भावों से रस-सिद्धि होती है उनकी संख्या ९ हैं और तदनुसार रस भी ९ है। यथा—

	स्थायी भाव		रस
१.	रति	—	शृंगार
२.	हास	—	हास्य
३.	शोक	—	करुण
४.	क्रोध	—	रौद्र
५.	उत्साह	—	वीर
६.	भय	—	भयानक
७.	घृणा	—	बीभत्स
८.	आश्चर्य	—	अद्भुत
९.	निर्वेद (विषयों मे उदासीन होना)		शान्त

रस के अन्य उपादान

(आश्रय, विभाग, अनुभाव तथा संचारी भाव)

जिसके हृदय मे भाव जागृत होता है उसे आश्रय कहते है। भावाभिव्यक्ति के कारण को विभाव कहते है। विभाव के दो भेद है—

१. आलम्बन-विभाव—जिसके सहारे भाव जागृत होते हैं।

२. उद्दीपन-विभाव—जो भावों को तीव्र बनाते है।

जिससे भाव का अनुभव अर्थात् अनुमान होता है उसे अनुभाव कहते हैं।

जो भाव बीच-बीच में लघु तरंगों की भाँति उठकर स्थायी भाव को पुष्ट कर जाते हैं उन्हें संचारी भाव कहते हैं।

रस की परिभाषा

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् रस की शास्त्रीय परिभाषा इस प्रकार होगी—रस वह अलौकिक तथा अनिर्वचनीय आनन्द है जो विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव के योग से किसी स्थायी भाव के व्यक्त होने से सहृदय जन के चित्त में आस्वादित होता है।

रस तथा रस-सामग्री का एक उदाहरण

रस तथा रस सामग्री को स्पष्ट रूप मे समझने के लिये 'काव्य सुधा' के पृष्ठ १८ से २२ में आये हुए परशुराम-लक्ष्मण-सम्वाद को देखिये। यहाँ राम लक्ष्मण आलम्बन-विभाव हैं; क्योंकि इनके सहारे परशुराम (आश्रय) का क्रोध (स्थायी-भाव) जागृत होता है। लक्ष्मण के व्यंग वचन और टूटा हुआ धनुष उद्दीपन विभाव हैं; क्योंकि ये परशुराम के क्रोध को

भड़काते है। परशुराम की चेष्टाएँ—फरसा घुमाना, नेत्रों का रक्तवर्ण होना अनुभाव है; क्योंकि इन चेष्टाओं से क्रोध की अभिव्यक्ति समझ में आती है। परशुराम का मोह (राम को न पहिचानना) अमर्श आदि संचारी भाव हैं; क्योंकि ये भाव अल्प काल के लिये आकर क्रोध (स्थायी भाव) को पुष्ट करते हैं। इस प्रकार परशुराम के क्रोध की उग्रता इतनी बढ़ती है कि पाठक पूर्ण तन्मयता से उसका आस्वादन करता है। यही रौद्र रस की निष्पत्ति है।

अन्य रसों के उदाहरण

शृंगार—श्रीमती महादेवी वर्मा की 'संसार' नामक कविता का दूसरा पद पृष्ठ १४२ पर देखिये।

हास्य—गोस्वामी तुलसीदासजी की कवितावली का पृष्ठ ५० पर बीसवाँ पद हास्य-रस का उदाहरण है।

करुण—अयोध्यासिंह उपाध्याय का यशोदा-विलाप करुण रस से ओत-प्रोत है। इस पुस्तक के पृष्ठ ७३ से ७९ तक देखिये।

रौद्र— परशुराम-लक्ष्मण-सम्वाद का उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है।

वीर— अंगद-रावण-सम्वाद पृष्ठ ३५ पर देखिये।

भयानक— कवितावली का २२ वाँ पद पृष्ठ ५१ पर देखिये।

बीभत्स—शिव-बारात के वर्णन का पहिला छन्द पृष्ठ १२ पर देखिये।

अद्भुत—राम-जन्म के समय भगवान् के विराट् रूप का वर्णन पृष्ठ १७ पर देखिये।

शान्त—विनयपत्रिका का ६ वाँ पद पृष्ठ ६३ पर देखिये।

नोटः—ऊपर दिये हुए रस-विवेचन तथा उदाहरणों की सहायता से रसों के अन्य उदाहरण विद्यार्थियों को 'काव्य-सुधा' से ढूँढ निकालना चाहिये।

परिशिष्ट (ख)

अलङ्कार

जहाँ कोई बात साधारण ढंग से न कही जाकर एक विलक्षण ढंग से कही जाती है, जिससे कथन में कुछ वक्रता आ जाती है और जिसके समझने में बुद्धि का आनन्ददायक व्यापार विशेष होता है, वहाँ अलंकार होता है। जिस प्रकार आभूषण शरीर की श्री-वृद्धि करते हैं उसी प्रकार अलङ्कार वाक्यों को चमत्कार-पूर्ण बनाते हैं। जहाँ चमत्कार शब्दगत होता है (अर्थात् शब्दों में परिवर्तन कर देने से नष्ट हो जाता है) वहाँ शब्दालंकार होते हैं और अर्थ को चमत्कृत करनेवाले (शब्दों की अपेक्षा न रखनेवाले) अर्थालंकार कहलाते हैं।

शब्दालङ्कार

अनुप्रास—जहाँ व्यञ्जनों की आवृत्ति होती है वहाँ अनुप्रास होता है। अनुप्रास के पाँच भेद है जिनमें छेकानुप्रास और लाटानुप्रास मुख्य हैं।

छेकानुप्रास—जहाँ एक अथवा अनेक वर्णों की एक बार आवृत्ति होती है वहाँ छेकानुप्रास होता है।

उदाहरण—परशुराम-लक्ष्मण-संवाद का अंतिम दोहा देखिये।

लाटानुप्रास—जहाँ शब्द और अर्थ की आवृत्ति होती है, परन्तु अन्वय करने से तात्पर्य में भिन्नता आ जाती है वहाँ लाटानुप्रास होता है।

उदाहरण—राम हृदय जाके बसं विपति सुमगल ताहि।
राम हृदय जाके नहीं विपति सुमगल ताहि।

श्लेष—जहाँ एक ही शब्द के अनेक अर्थ होते हैं वहाँ श्लेषालङ्कार होता है।

उदाहरण—दोहावली का दोहा नं० ११ पृष्ठ ५८ पर देखिये।

यमक—जहाँ निरर्थक शब्द खडों की आवृत्ति होती है अथवा सार्थक शब्द भिन्न अर्थों मे बार-बार आते हैं वहाँ यमक अलङ्कार होता है।

उदाहरण—देखिये 'कृष्णायन की प्रस्तावना' की पहिली पंक्ति—जन्मेउ वदी धाम, जो जन-जननी मुक्ति हित।

अर्थालङ्कार

उपमा—दो विभिन्न पदार्थों में समानता बताने को उपमा कहते है। उदाहरण—देखिये 'वन फूल'—'जगमगाता था उषा सा कण्टकों में वह सुमन'।

जिस पदार्थ का वर्णन किया जाता है उसे 'उपमेय' और जिससे तुलना की जाती है उसे 'उपमान' कहते हैं।

रूपक—जहाँ उपमान को उपमेय मान लिया जाता है वहाँ रूपक होता है।

उदाहरण—देखिये 'रश्मि' में

इन कनक रश्मियों में अथाह

लेता हिलोर हिम सिंधु जाग।

उत्प्रेक्षा—जहाँ कवि की प्रतिभा उपमेय की उपमान रूप में सम्भावना देखती है वहाँ उत्प्रेक्षालङ्कार होता है।

उदाहरण—देखिये 'कवितावली' सवैया नं० १९ पृष्ठ ५० पर।

अतिशयोक्ति—जहाँ कोई बात बहुत बढ़ा या घटा कर कही जाती है वहाँ 'अतिशयोक्ति' अलङ्कार होता है।

उदाहरण—गीतावली का पद नं० ७ पृष्ठ ५६ पर देखिये।

व्याज स्तुति—जहाँ देखने में निन्दा जान पड़े; पर वास्तव में स्तुति हो, वहाँ 'व्याज स्तुति' अलङ्कार होता है।

उदाहरण—विनयपत्रिका का दूसरा पद पृष्ठ ६१ पर देखिये।

व्याज निन्दा—जहाँ देखने में स्तुति जान पड़े; पर वास्तव में निन्दा हो वहाँ 'व्याज निन्दा' अलङ्कार होता है।

उदाहरण—कान नाक बिनु भगिनि निहारी।
लगा कीन्हि तुम धर्म विचारी।

अन्योक्ति—जहाँ एक वस्तु का वर्णन किसी दूसरी वस्तु पर ढाल कर किया जाता है वहाँ 'अन्योक्ति' अलङ्कार होता है।

उदाहरण—दोहावली में 'चातक-प्रेम' के दोहे पृष्ठ ५६-६० पर देखिये।

———

परिशिष्ट (ग)

पिङ्गल-परिचय

छन्दःशास्त्र या पिंगलशास्त्र—जिस शास्त्र में छन्दों के नाम, रूप, भेद, नियमादि पर विचार किया जाता है उसे छन्दः-शास्त्र कहते हैं। इस शास्त्र के प्रथम आचार्य महर्षि पिङ्गल थे, अतएव इसे पिङ्गलशास्त्र भी कहते हैं।

छन्द या पद्य—छन्द या पद्य उस रचना को कहते है जिसमें मात्रा या वर्णों की संख्या, क्रम, गति (प्रवाह), यति (विराग) तथा तुक (अन्त्यानुप्रास) आदि का ध्यान रखा जाता है।

छन्दों के भेद

छन्दों के दो भेद होते हैं:—(१) मात्रिक (२) वर्णिक।

मात्रिक छन्द—जहाँ मात्राओं की संख्या, तुकादि नियमित होते है वहाँ मात्रिक छन्द होता है।

मात्राओं की गणना के समय ध्यान रहे कि लघुस्वर या लघुस्वरयुक्त वर्ण की एक मात्रा और दीर्घ स्वर या दीर्घ स्वर-युक्त वर्ण की दो मात्राएँ गिनी जाती है और संयुक्त वर्ण के

पूर्व अथवा किसी-किसी छन्द के चरण के अन्त में आनेवाला लघुवर्ण गुरु माना जाता है।

मात्रिक छन्दों के मुख्य भेद लक्षण-सहित नीचे लिखे जाते हैं।

दोहा—दोहे के पहिले और तीसरे चरण में १३ और दूसरे और चौथे चरण में ११ मात्राएँ होती हैं।

दोहावली से उदाहरण लेकर इन लक्षणों की जाँच कीजिये।

चौपाई—चौपाई के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं।

रामचरित-मानस की कुछ चौपाइयाँ लेकर मात्राएँ गिनिये।

सोरठा—सोरठा दोहे का उल्टा होता है। पहले और तीसरे चरण में ११ मात्राएँ होती हैं।

'कृष्णायन की प्रस्तावना' में आया हुआ सोरठा पृष्ठ ११७ पर देखिये।

रोला—रोला छन्द में २४ मात्राएँ होती हैं। ११ और १३ पर यति होती है।

'काश्मीर-सुषमा' के पद पृष्ठ ६५ पर देखिये।

गीतिका—गीतिका में २६ मात्राएँ होती हैं। १४ और १२ पर यति होती है।

उदाहरण—मातृ-भू सी मातृ-भू है, अन्य से तुलना नहीं।

कुंडलिया—में एक दोहा और एक रोला होता है।

गिरिधर कविराय की कुण्डलियाँ देखिये।

छप्पय—छप्पय के पहिले चार चरणों में २४ मात्राएँ होती हैं और ११-१३ पर यति। अन्तिम दो चरणों में २८ मात्राएँ और १५-१३ पर यति; अथवा २६ मात्राएँ और १३-१३ पर यति होती है।

उदाहरण—तरणि-तनूजा-तट-तमाल तरुवर बहु छाये।

सार—सार में २८ मात्राएँ होती हैं और यति १६-१२ पर। अन्तिम दो वर्ण गुरु होते हैं।

उदाहरण—किसने किसको कहते देखा, अपनी आप खुटाई।

सरसी—सरसी में २७ मात्राएँ और १६-११ पर यति होती है। अन्तिम दो वर्ण गुरु और लघु होते हैं।

उदाहरण—जड़ चेतन यह बता रहे हैं तेरी बात अनूप।

वर्णिक छन्द

जिन छन्दों के प्रत्येक चरण में वर्णों की संख्या निश्चित रहती है तथा लघु-गुरु क्रम एक सा रहता है, उन्हें वर्णिक छन्द कहते है।

गण—तीन वर्णों के समूह को गण कहते हैं। लघु गुरु के विभिन्न क्रमों के अनुसार गण ८ होते है। गुरु और लघु के चिह्न क्रमश. ऽ, । है। गण तथा उनके लक्षण नीचे दिये जाते हैं :—

यगण—। ऽ ऽ

मगण— ऽ ऽ ऽ

तगण— ऽ ऽ ।

रगण— ऽ । ऽ

जगण— । ऽ ।

भगण— ऽ । ।

नगण— । । ।

सगण— । । ऽ

'यमाता राज भान सलगा' इस कारिका की सहायता से गण तथा उनके लक्षण स्मरण रखने में सुगमता होगी। संक्षेप और स्मरण-सुविधा की दृष्टि से गणों का निर्देश उनके प्रथम अक्षर द्वारा किया गया है। 'ल, ग' क्रम से लघु और गुरु के संकेत हैं। नीचे कुछ वर्णिक छन्दों के नाम और लक्षण दिये जाते हैं।

मालिनी—मालिनी छन्द के प्रत्येक चरण में 'न न म य य' होते हैं। ८, ७ पर यति।

हरिऔध का 'यशोदा-विलाप' पृष्ठ ७३ पर देखिये।

द्रुतविलम्बित—द्रुतविलम्बित वृत्त के प्रत्येक चरण में 'न भ भ र' होते हैं।

हरिऔध की 'व्रज की संध्या' पृष्ठ ७१ पर देखिये।

मन्दाक्रान्ता—मन्दाक्रान्ता के प्रत्येक चरण में 'म भ न त त ग ग' होते हैं। यति ४, ६ और ७ के बाद होती है। सूत्र के अन्त में आये हुए 'ग ग' का अर्थ है दो गुरु वर्ण।

उदाहरण—

पत्रों पुष्पों रहित विटपी विश्व में हो न कोई।
कैसी ही हो सरस-सरिता वारि शून्या न होवे॥
ऊधो सीपी सदृश न कभी भाग्य फूटे किसीका।
मोती ऐसा रतन अपना आह! कोई न खोवे॥

'हरिऔध'

स्रग्धरा—'स्रग्धरा' में 'म र भ न य य' होते हैं।

उदाहरण—नाना फूलों फलों से अनुपम जगत की वाटिका है विचित्रा।

तोटक—'तोटक' में चार 'सगण' अर्थात् 'स स स स' होते हैं।

उदाहरण—जय राम सदा सुख धाम हरे।

शिखरिणी—शिखरिणी के प्रत्येक चरण में 'य म न स भ ल ग' होते हैं और छठवें और ग्यारहवें वर्ण पर यति होती है।

उदाहरण—अनूठी आभा से, सरस सुषमा से सुरस से।
बना जो देती थी, बहुत गुणमयी भू विपिन को॥
निराले फूलों की, विविध दलवाली अनुपमा।
जड़ी बूटी नाना, बहु फलवती थी विलसती॥

'हरिऔध'

सवैया

सवैया के कई भेद होते हैं। इसके प्रत्येक चरण में २२ से २६ तक वर्ण होते हैं। सवैया के दो मुख्य भेद नीचे दिये जाते हैं।

दुर्मिल—दुर्मिल सवैया में ८ सगण होते हैं।

कवितावली का १२ वाँ छन्द पृष्ठ ४९ पर देखिये।

मत्तगयन्द—मत्तगयन्द सवैया में ७ भगण और अन्त में दो गुरु होते है।

कवितावली के छन्द ६ से ८ तक पृष्ठ ४७ ४८ पर देखिये।

कवित्त अथवा मनहरण

कवित्त या मनहरण छन्द के प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण होते हैं। १६ और १५ पर यति और अन्त में गुरु होता है।

कवितावली का ग्यारहवाँ छन्द पृष्ठ ४८ पर देखिये।

मुक्त वृत्त या स्वच्छन्द छन्द

मात्रिक और वर्णिक छन्दों के अतिरिक्त इधर कुछ दिनो से एक नया छन्द चल पड़ा है जिसे मुक्त वृत्त या स्वच्छन्द छन्द कहते हैं। इसमें मात्रा या वर्णों की गणना का बन्धन नहीं होता; परन्तु गति अर्थात् शब्द-प्रवाह और लय का ध्यान इसमें भी रखा जाता है।

उदाहरण—'अंचल' की 'वर्षान्त के बादल' कविता पृष्ठ १५३ पर देखिये।

परिशिष्ट (घ)

आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख धारायें

१—रहस्यवाद

सृष्टि के मनोरम और अद्भुत रूपों को देखकर मानव सदैव कौतूहल और विस्मय का अनुभव करता रहा है। विश्व को संचालित करनेवाली अज्ञात सत्ता के प्रति उसके मन मे आदिकाल मे जिज्ञासा रही है। धीरे-धीरे उसके यह कौतूहल और विस्मय आकर्षण और अनुराग मे बदल जाते है। जब परमात्मा के प्रति जीवात्मा की प्रेम-भावना कविता में प्रकट होती है तब उसे रहस्यवादी कविता कहते हैं। रहस्यवाद, दार्शनिक अनुभूतियो को काव्य का जामा पहनाता है। उसमें दार्शनिक भावनायें और धारणाये भावमय और कवित्वपूर्ण ढंग से प्रकट की जाती हैं परमात्मा की असीम सत्ता के साथ विश्व और जीवन के संबंध का निरूपण उसमें होता है।

रहस्यवादी कवि को प्रकृति में चिर सुन्दर प्रियतम का बोध होता है। उसे समस्त विश्व उस अलौकिक प्रियतम के प्रेम के रग में रँगा प्रतीत होता है। संसार के कण-कण में रमी अलक्ष्य सत्ता मानव-हृदय के लिए एक रहस्य है। उस रहस्य

का निरूपण जिस कविता में हो उसका रहस्यवाद नाम पड जाना स्वाभाविक ही है। इस युग के प्रमुख रहस्यवादी कवि जयशंकर 'प्रसाद', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा है।

२—छायावाद

आरम्भ में खड़ी बोली की कविता वर्णन प्रधान और उपदेश-पूर्ण थी। उसमे भावों की सूक्ष्मता और कला के सौन्दर्य का अभाव था। धीरे धीरे बाह्य जगत् से ऊबकर कवियों की दृष्टि अपनी आन्तरिक भावनाओं की ओर गई। उन्होंने कविता में अपने मन के जगत का चित्रण किया। कविता मे इस आत्मदर्शन की प्रवृत्ति का नाम छायावाद है। मनुष्य के अन्तर्लोक का चित्रण इस प्रकार की कविता में छायाचित्रों के रूप में होता है। इसलिए इस कविताशैली का नाम छायावाद पड़ा। किन्तु कुछ लोगों ने इस प्रकार की नए ढंग की कविता में पाई जाने वाली अस्पष्टता के कारण (उन्हे यह कविता छाया की तरह अस्पष्ट प्रतीत होती थी) इसे छायावादी कविता के नाम से पुकारा।

छायावाद ने हिन्दी कविता को नई भाषा और नई शैली प्रदान की। प्रकृति के सौन्दर्य का सूक्ष्म वर्णन भी इसमे होता है। यही नहीं कवि प्रकृति मे मानवीय चेतना और मानवीय भावना आरोपित करता है।

सुमित्रानन्दन पन्त, 'निराला' और 'प्रसाद' छायावाद के प्रमुख कवि माने जाते हैं।

३—स्वच्छन्दतावाद

स्वच्छन्दतावाद उस काव्य धारा का नाम है जिसमे कवि कल्पना की दृष्टि से संसार को देखता है। वह विश्व की अपूर्णता से ऊबकर अपने मन मे एक नई दुनियाँ की सृष्टि कर लेता है और उस कविता में उतारता है। स्वच्छन्दतावाद मे जीवन की गतियों को रोकने वाली व्यर्थ की रूढ़ियों से कविता मुक्त हो जाती है। काव्य के क्षेत्र में चली आने वाली परम्पराओं को कवि त्याग देता है।

इस काव्य-धारा में कवि विषयों के चुनाव में पूर्ण स्वतंत्रता से काम लेता है। वह साधारण से साधारण विषय का काव्यात्मक चित्रण करता है। वह अभिव्यजना की नई शैली और नए छन्द विधान की सृष्टि करता है।

इस काव्य-धारा के प्रमुख कवि श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तथा 'बच्चन' है।

४—प्रगतिवाद

कविता को जब केवल आत्माभिव्यक्ति का साधन न मान-कर उसे लोक-कल्याण का साधन माना जाता है तब उसका

स्वरूप बहुत कुछ बदल जाता है। कविता तब जीवन की सुन्दरता मात्र का चित्रण न कर जीवन की कठोरता और कुरूपता का भी चित्र खींचती है। उसमे कल्पना का स्थान सामाजिक अनुभूति ले लेती है। प्रगतिवाद उस काव्य-धारा का नाम है जिसमें आर्थिक क्रान्ति, सामाजिक समानता, सर्वोदय और विश्व-शांति पर जोर दिया जाता है।

साम्यवाद के राजनैतिक सिद्धान्तो का उस पर विशेष प्रभाव पड़ा है। प्रगतिवाद साहित्य को शोषित और पीडित जनता की मुक्ति का साधन मानता है। इसीलिए प्रगतिवाद में राजा-रानी, भूमि-पति, धनी-मानी, नगर, प्रासाद आदि के चित्रों और वर्णनों के स्थान पर मजदूर-किसानों के शोषण और उनकी दयनीय दशा के चित्र मिलते है। कला और साहित्य में उपयोगिता को ही यह विशेष महत्त्व देता है।

इस काव्य-धारा के प्रमुख कवि माखनलाल चतुर्वेदी, भगवतीचरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अचल' और 'दिनकर' है।
